काठनिबारो घाट

आदान-प्रदान

काठनिबारी घाट

लेखक
महिम बंरा

अनुवाद
नवारुण वर्मा
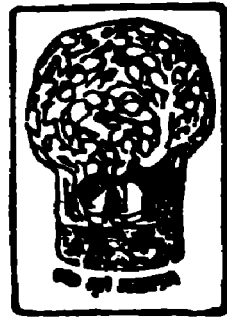
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

माता-पिता की सजल
स्मृति में

विषय-सूची

कथा-क्रम	पृष्ठ
भूमिका— घाट की राह में	ix
1. काठनिबारी घाट	1
2. अपराजित	12
3. चारा	22
4. फादर एंड सन कम्पनी	34
5. एक किरण : स्मृति-चांदनी की	44
6. पड़ोस वाले	52
7. चक्रवत्	58
8. कानी उंगली	71
9. निस्संदेह	76
10. तीसरे दर्जे का मुसाफिर	93
11. दैनन्दिन	100
12. मछली और इंसान	107

भूमिका

घाट की राह में

सन् 1947 से सन् 1960 तक की अवधि में लिखी गयी कुछ कहानियां या 'कहानी प्रयास' है यह 'काठनिबारी घाट'। दो-एक कहानियां जब बाहर से प्रशंसा की दो-एक पुड़िया ले आयीं, उसी पुलक से पुस्तक निकालने हेतु पिछले पांच साल काफी दौड़-धूप की। पर जैसा कि आमतौर पर होता है—प्रकाशक न मिला।

कहानी लिखकर नाम छपवाने और नाम में आग लगवाने का षड्यंत्र तो अरसे से चला ही आया है मगर वैसा मौका नहीं मिला। क्योंकि इसी बीच बड़े होकर कुछ देशी-विदेशी अच्छी कहानियां पढ़ने का दुर्भाग्य मिला। नतीजा यह हुआ कि जब कभी कहानी लिखना चाहता हूं, हाथ-पैर कांपने लगते हैं। 'आत्म-श्री कातर' जीवन भी कुछ लिखने के मार्ग में बाधा डालता रहा है।

जिस काम को कभी आसान समझा करता था, वास्तव में बुरी कहानी लिखना भी कम परेशानी का काम नहीं है। एक-एक कहानी के लिए जिन्दगी में क्या कम भोगना पड़ता है? हालांकि जो लोग दक्ष हैं, उनकी बात ही और है।

···खैर, वह सब रहे। फिर कहानी लिखने का जो जोश जगा, उसका कारण नियमित (हाय! नियंत्रित !!) चाय-सिगरेट जुटाने और 'कापी' बना देने के लिए 'चिर प्रस्तुत' एक 'नये उपद्रव' का आविर्भाव ही मुख्य रहा। तिस पर उस दिन एक और सज्जन-मित्र का आविर्भाव हुआ—यानि आप लोगों के पहचाने श्री भद्र बरा का, 'कोई प्रकाशक अगर खुद बनाकर भी देना पड़े तो बना भी दूंगा' कहकर वह पांडुलिपि ले गए और प्रकाशक दिया भी।

अब प्रकाशक को आप लोग जेब खोलकर आशीर्वाद दें। मैं तो दिल खोलकर दे ही चुका हूं। और किसी जायके के डर से अगर पढ़ने मे डर रहे हों तो अभय दे रहा हूं—क्योंकि कोई खाने की चीज नहीं है न।

तो फिर आगे बढ़ें। राह में वक्त जाया नहीं करूंगा, नमस्कार।

नगांव : 14 वैशाख
27-4-1961

—महिम बरा

1 काठनिबारी घाट

ब्रह्मपुत्र के किनारे पहाड़ों जैसे कोयले के ढेर लगे हुए थे, समूचा किनारा कटाव से जर्जर-सा हो गया था। जहां तक नजर जाती थी, हरियाली नजर आ रही थी। बरसात में ब्रह्मपुत्र का पानी कंकड़ डाली हुई सड़क के किनारे तक पहुंच जाता है। पानी सूखने के साथ-साथ सड़क तक पहुंचने के लिए काफी दूर हट कर उतर आना पड़ता है। रेत पर बांस के फट्टे-फट्टियां आदि डालकर लोगों ने आने-जाने का मार्ग बना लिया था। वहां की अकेली चाय-की दूकान, रेत पर गड़ी बांस की मचान पर फूस के एक छप्पर के तले अपने को प्रकट किये हुए थी। मिट्टी के तेल के टीनों को जोड़कर बनाया हुआ उसका झूला दरवाजा ऊपर उठा देने पर दूसरी छत बन जाता। उसके तले बांस की चार खूंटियों पर बांस के दो फट्टे डाल देते ही एक सुन्दर-सी बेंच बन जाती। उस पर बैठकर चाहें तो चाय पीयें, बीड़ी खरीदें, चाहे सिगरेट जलाएं, बातें करें।

मैं वह सब कुछ भी कर न रहा था सिर्फ सिंदूर के एक विशाल कटोरे जैसे बने सूरज को देख रहा था। जहाज तो रात में नौ ही बजे आने वाला था, याने नियम ही ऐसा था। दिन का झुटपुटा रहते ही मैं आकर घाट पर पहुंच गया था। देखते-देखते, नन्हीं-नन्हीं लहरें अपनी नन्हीं-नन्हीं उंगलियों से टपाटप चेहरे पर सिंदूर मलकर कहीं रंग-तमाशे देखने को भाग रही थीं।

तभी किसी ने मानो क्रोध से समूचे सिंदूर को उछाल कर उसके शरीर पर फेंक दिया। लगा, वह सूनी मांग की कोई औरत ही हो।

मन सूना-सूना-सा हो गया था। यात्री तो नहीं के बराबर थे। सपरिवार दो नेपाली थे और कुछ चाय-बागान के मजदूर थे। चाय की पेटियां लाने वाली और कोयले ले जाने वाली चाय-बागान की ट्रकें ही अब तक इस काठ निबारी घाट को सजीव बनाए हुए थीं। दूर के चाय-बागानों के कारखानों के धुएं की अस्पष्ट रेखाएं अब अंधेरे में खोती जा रही थीं। काले असुर-सा मोटर बोट, उस पर काम करने वाले खलासी, मजदूर वर्ग के कुछ लोग, चाय-दूकान वालों का परिवार और हम यात्री नाम के चन्द प्राणियों को अकेला पाकर मानो अंधेरे ने आ घेरा।

एक 'हुर-हुर' की आवाज के साथ झींगुरों की झनकार ने कौतूहल बढ़ा दिया। दूकान की फूस, सरकंडे की टट्टी के छेदों से एक बैलगाड़ी नजर में आयी। गाड़ीवान ने उतरकर गाड़ी का जुआ बैलों के कंधों से उतार, जमीन पर रख दिया। बैल इधर-उधर घास-पत्ते सूंघने-चरने लगे। गाड़ी के सामने लगे परदे का हरा रंग तब भी नजर आ रहा था। साथ ही दिल भी कुछ हरा होकर परदे जैसा ही कांपने लगा। पन्द्रह-सोलह

साल का एक चुलबुला लड़का कूदकर गाड़ी से नीचे उतरा। गाड़ीवान के साथ मिलकर एक टीन का ट्रंक गाड़ी से उतार जमीन पर रखा। झुका, उठाकर ट्रंक गाड़ीवान के सिर पर चढ़ा दिया और लड़का आगे-आगे राह दिखाता उसे बोट पर ले गया।

फिर एक बार दिल कांपने लगा। गाड़ी के अंदर से निकलती हुई प्रतिमा साफ-साफ नजर आ रही थी। क्योंकि प्रकाश की तैरती हुई अंतिम कणिकाएं अभी ओझल ही हो रही थीं। शरीर के कपड़े-लत्तों को झाड़-संभालकर नदी की तरफ देखती हुई वह खड़ी हो गयी। वह लड़का और गाड़ीवान पास आये। 'होलडाल' आदि दो-एक चीजें गाड़ी से उतार लाकर वे बोट की ओर चल पड़े। मेरी नजरें उनके पीछे जा लगीं।

कुछ देर बाद लड़का और गाड़ीवान निकल आये। लड़के ने दूकान के पास आकर गाड़ीवान को चाय पीने का पैसा देते हुए जल्द बैलों को जोतने का निर्देश दे, कहा—हम सकुशल पहुंच गये हैं, बता देना, समझा न ?

गाड़ीवान को समझाकर लड़का बोट में लौट गया। गाड़ीवान ने एक सिंगल चाय, एक केला और बिस्कुट जैसे-तैसे गले में उतार लिया। दूकान के पास अपने ही वर्ग के एक मजदूर यात्री के प्रश्नों का जवाब देते हुए गाड़ीवान ने बताया कि उसे 15 किलो मीटर जाना है। गाड़ी की यात्रा शुरू हुई। घाट पर उसने गाड़ी की जो बत्ती जलाई थी, उसका धुंधला उजाला काफी दूर से दिखता रहा। आखिर एक मोड़ में वह अचानक छिप गया।

बोट के एक सिरे पर कंदील का एक धीमा-सा उजाला जग उठा। शायद उन दोनों ने भी उसी जगह को चुन लिया था। मेरा सामान भी वहीं पड़ा था। समूचे बोट पर अकेली वही आराम करने की जगह है। बोट पर पहुंचने के रास्ते में भी कुछ देर-पहले एक लालटेन जल उठी थी। दूकान के सामने भी एक लालटेन जल रही थी। उजाले के इन तीन खंभों ने अंधेरे के ताम्र-कलश को मजबूती से ढंक दिया। कहीं कगार की मिट्टी का एक टुकड़ा तेजी से पानी में कूद पड़ा। झप ! उसके बिलकुल समीप छिछले पानी में कुछ चेलेकना मछलियों के खिक्-खिक् कर हँसने की साफ आवाजें आयीं। मैंने कोयले की ढेरियों की ओर नजर डाली। परिकथाओं के भेस बदले राक्षसों की भांति वे मुहरें खाने को मानो भागती आयीं।

बोट पर अपनी जगह पहुंचने और नये यात्रियों के बारे में पता लगाने हेतु मेरे मन में खलबली मची थी। लकड़ी के मजबूत पुल पर से होकर मैं बोट के अन्दर गया। बोट के झुटपुटे अंधेरे में चाय की पेटियों, रंगों, कोलतार, सूखी मछलियों, जले कोयलों आदि की हर तरह की गंधों ने 'लाओ पानी' (देसी मदिरा) पीकर मानो कोरस शुरू कर दिया हो। सालों तक बंद रहने के बाद एक बड़ी संदूक ही मानो किसी ने नाक के सामने फैला दी हो। प्लेटों की यह गंध मुझे बड़ी प्यारी लगती है। खलासी आदि वर्गों के लोग जहाज आने के पहले ही खाना-पीना खत्म करने में जुट पड़े थे।

मेरे सामान रखने की जगह से कुछ हटकर उस नेपाली परिवार ने कम्बल बिछाकर लम्बे आलाप से गाना शुरू कर दिया था। उससे कुछ हटकर रेलिंग के बीच कुछ संथाली

या उड़िया लोग मंडली बनाकर बैठे हुए जल्दी-जल्दी कुछ चबाने में जुटे थे। शायद भुना चांवल। मेरे सामने से बिलकुल लगे मेरे सूटकेस और बिस्तर का बंडल कुछ हटाकर 'होल-डाल' फैलाकर लेटे-लेटे वह लड़का कंदील के उजाले में एक अंग्रेजी फिल्म मैगजीन फैलाए उसी में तल्लीन-सा हो गया था। उसके सिरहाने वही लड़की उस पत्रिका की ओर निर्लिप्तता से नजर डाले बैठी हुई थी।

'मुझे क्या करना है', कुछ निश्चित न कर पाने के कारण मैंने सूटकेस को जरा हिलाया-डुलाया। लड़की ने मेरी ओर नजर उठाकर देखा। लेकिन कंदील के धुंधले उजाले में मुझे देखने के लिए उसे कुछ समय मेरी तरफ देखते रहना पड़ा। फायदा यह रहा कि उस कंदील के उजाले ने जो फ्रेम-सा बना दिया था, उससे उसका चेहरा क्षण भर में देख लेने का मौका मुझे मिल गया। उस लड़के ने उस मैगजीन पर हाथ रखे उसी हालत में मेरी ओर देखा। मैं कुछ झुककर जब सूटकेस को हिला-डुला रहा था तभी कंदील के उजाले ने मेरे चेहरे को चूम लिया था।

लड़का अचानक घबराकर उठ बैठा। लड़की ने भी जूड़े तक ओढ़नी ओढ़ ली।

—आपका सूटकेस? हमने जरा किनारे हटा दिया है। हम सिकुड़कर बैठेंगे, आप बिस्तर लगा लीजिये।

उस लड़के ने इतने पहचाने लहजे में यह बात कही कि मैं चौंक-सा गया। लोगों का परिचय जल्द ही भूल जाया करता हूं इस कारण कई जगह शर्मिन्दा भी होता आया हूं। लेकिन बेकार। इन्हें कहीं देखा है ऐसी याद मन में नहीं आयी।

—न-न···बस ठीक है, तुम लोग याने तुम···ठीक से बैठे रहो। मेरा इन्तजाम हो जायेगा।

कम्बल से मुड़े अपने बिस्तर के बंडल (जो गंदा हो गया था) को उंगलियों की चतुराई से इसी बीच सूटकेस के पीछे कर लिया था। लेकिन जिसे रखवाला बना लिया, उस बद-रंग सूटकेस को ही भला संभालू तो कैसे? हालांकि सूटकेस अच्छा था, शुरू से आखिर तक विलायती स्टील का, मगर आदि-अंत का विचार ही कौन करता है? मुझे अपना सामान हटाते देख लड़का कुछ असंतोष से बोला क्या आप कहीं और चले जाना चाहते हैं? तब तो हम बुरा मानेंगे···

लड़का सचमुच अपने बिछाये 'होल-डाल' को सिकोड़ने लगा।

—न-न, तुम लोग आराम करो, जहाज कितनी रात को आये, क्या पता? समय का कोई ठीक-ठिकाना है नहीं, और कभी-कभी तो जहाज आता भी नहीं।

—इसी कारण आप यहीं रहिये। और कोई यात्री भी नहीं है, तिसपर असमी आदमी कोई नहीं है। दीदी और मैं यही चर्चा कर रहे हैं। कोई संगी-साथी मिल जाता तो···

—समझ गया कि लड़का भी बहन जैसा ही डर गया है। मैंने भी अपने आवारा किस्म के सूटकेस और कपड़े का बंडल हटाने के लिए ही यह चतुराई की थी। अब मेरा कपड़े का बंडल ओढ़नी की ओट से झांक सकता था। बंडल खोलकर फैला लिया और

उनके पैताने बैठ गया।

—टिकट कटाने का समय हो गया है शायद, मैं जरा पता कर आऊं ! कहां का लेना है। टिकट कटाने का समय नहीं हुआ था, लेकिन पूछने को और कुछ विषय मिल ही नहीं रहा था।

—हमें जोरहाट जाना है। लड़के ने जैसे-तैसे बैठकर जवाब दिया।

जोरहाट ? उसकी बात पर मैं चौंक-सा उठा। मगर आज तो जहाज डाउन की ओर ही जाने वाली है। जहाज की खबर सिर्फ अदरख का व्यापारी ही रखता हो, ऐसी बात तो नहीं। ये लोग वैसे होंगे, इसका भी तो कोई लक्षण नहीं था।

लड़का मेरी चिन्ता का भाव हलका करने का अवसर पाकर पुलकित हो उठा। पांचवें वर्ग के लड़के को अगर छठे वर्ग वाले किसी को कुछ समझाना पड़े तो वह जिस प्रकार पुलक का अनुभव करता है, वैसी ही उमंग में उसने मुझे समझा दिया कि वे डाउन स्टीमर से शिलघाट जाकर उतरेंगे, फिर वहां से स्टेट ट्रांसपोर्ट से जोरहाट पहुंचना है।

चाहे जैसे भी हो हमें कल ही जोरहाट पहुंच जाना है। बहुत ही जरूरी है। बातों के मतलब ने ही नहीं, उनकी बातों ने ही मुझे ज्यादा आकर्षित किया था। नयी बहू हालांकि स्वभाव-सुलभ लज्जा से एक सिरे पर बैठी हुई थी, फिर भी कभी-कभी उसके चेहरे को देख ऐसा लगता था कि वह भी हमारी बातचीत में सक्रिय हिस्सा ले रही है। मुंह से कोई आवाज किये बगैर अपने को इस तरह सजीव बनाये रखने वाले इस अद्भुत गुण के बारे में ही मैं सोच-विचार रहा था। उसका विवाह हुए जरूर ज्यादा दिन नहीं बीते हैं, शरीर में लगी हल्दी का रंग कंदील के उजाले में मेरी नजरों में साफ-साफ आ रहा था। उसके शरीर पर की चादर पर से, बालों से विवाह की हल्दी-तेल की भीनी-भीनी मन-भावन सुगंध की लहरें मानो मेरी नाक में आकर ठहर गयी थी। एक गोलमटोल चेहरा, लम्वे बैलूनों जैसे गोल-गोल हाथ हल्दी-सा शरीर का चमकीला रंग और असमीया पाट (रेशम) के पहनावे के रंग आदि ने उसे एक तस्वीर-सा बना दिया था। ऐसा रूप-रंग आजकल ज्यादा देखने में नहीं आता। अचानक मुझे याद हो आया, लड़के ने मुझसे कुछ पूछा था, लेकिन जवाब न पाकर वह कुछ संकोच में भी पड़ गया।

—हां-हां, क्या पूछा था तुमने ? मुझे कहां जाना है ? हां, मुझे भी शिलघाट ही जाना है। घर शिलघाट के समीप ही है।

—तब तो और भी अच्छा हुआ। जहाज रात को ही शिलघाट पहुंचता है। आपका साथ मिल जाने से हमें काफी सुविधा रहेगी, है न, दीदी ?

—दीदी उस पत्रिका को ही उलट-पुलट रही थी। लेकिन उसके कान हमारी बातचीत में लगे थे। अपनी सहमति सूचित करती हुई वह सिर उठा भाई की तरफ देखती रही।

मानो किसी ने पक्के रंग से उसके समूचे चेहरे पर हंसी छाप दी थी। नहीं तो भला उसकी लिलार क्यों हंसती ? नाक, आंखें, ठुड्डी आदि भी कहीं हंसते हैं ? ऐसी घनी भौंहें कहीं इतनी महीन मुस्कान भर सकती हैं ?

और दिनों जैसे जहाज आने का समय हो गया था। मैं पता लगा लाने को खड़ा हो गया। लड़का टिकट के पैसे निकालना चाहता था। मैंने रोक कर कहा, अभी टिकट की घंटी नहीं बजी है, फिर टिकट मिल रहा हो तो मैं अपने पैसे से ही ला सकूंगा। पैसा बाद को दे देने पर भी काम चल जायेगा।

जहाज आने में देर हो तो हम जरूर चाय पी सकते हैं न ? चलते हुए मैंने पूछा।

लड़के ने बहन की ओर देखा। बहन ने 'होल-डाल' को उंगली से दो एक बार ठोंक कर मानो अप. .आप कहा—फ्लास्क कहां रह गया ?

मुझे पहली बार उसकी आवाज सुनायी पड़ी थी। गंभीर यद्यपि मक्खन जैसी कोमलता उसमें मिली हुई—ऐसी आदमी की आवाज हो सकती है या नहीं, मुझे पता नहीं।

लड़के ने फ्लास्क निकाला। फ्लास्क ले मैं रेलिंग के पास पहुंचा। पास ही एक सूंस ने पानी में सिर उठाकर मानो रात कितनी हुई है, उचक कर एक बार देख लिया। कहीं हड़हड़ाता हुआ कगार की मिट्टी का एक टुकड़ा ढहकर नदी में गिर पड़ा। दूर चाय-बागान से आती हुई मादल की थकी-सी थाप गूंज रही थी।

पता चला, आज टिकट देने की कोई आशा नहीं। शायद जहाज कहीं किसी बालूचर में फंस गया है। नाराजी से टिकट मास्टर ने बताया। कहते हैं कि पिछले भूकम्प ने टिकट मास्टर की नींद पर भी बालूचर जमा दी है।

चाय वाले का परिवार भी भोजन कर चुका था। बच्चे बांस की एक मचान से दूकान के सामान उतारकर उस पर सोने का इन्तजाम कर रहे थे। सामने की मचान पर गद्दी फैला कर प्रौढ़, मोटा-सा दूकान वाला और तीन आदमियों के साथ ताश खेलने में तल्लीन था। मैं वहां पहुंचा ही था कि एक आदमी कह उठा—दस बज गया, अब उठना है।

बस यही पाली, दूसरे ने ताश फेंटते हुए जवाब दिया। मुझे किसी ने नहीं देखा था। रस-भंग किये बगैर मैं खेल देखने लगा। हार्टबन, स्पेडबन, नो ट्रम्प, थ्री डायमंड्स, डबल आदि फटके की आवाजें होने लगीं। खेल शुरू होकर खत्म भी हो गया। अंतिम खेल के लिए जोर डालने वाला पक्ष याने दूकान वाला काफी हार चुका था। इसके बाद दूसरे तीनों चलने को तैयार हुए। समझ गया, तीनों चाय-बागान में नौकरी करते हैं—रात यहां आकर ताश खेला करते हैं।

दूकानदार के मुरझाये काले चेहरे की ओर मैं सहानुभूति से देख रहा था। इतनी देर बाद उसने मेरी ओर ध्यान दिया। क्या आपको कुछ चाहिए ? उसने कोमल आवाज से पूछा।

—चाय चाहिए थी। दे सकेंगे ? सोने की तैयारी करने वाले बच्चों की ओर नजर डालते हुए मैंने पूछा। जरूर, शायद आज जहाज आयेगा ही नहीं। एक छोटा लड़का इसी बीच छलांग भर कर पास खड़ा हो गया।

—एक कप ?

मैंने फ्लास्क बढ़ा दिया—तीन।

ओ, आपका परिवार भी है? दूकानदार कहता गया—अगर कोई दिक्कत हो तो सूचित करें। खाना-पीना चाहें तो सारा इंतजाम कर देंगे। रात को भी चाय, गरम पानी आदि की जरूरत हो तो ले जायें।

काफी मोटा, काले रंग का प्रौढ़ सज्जन। चेहरे पर एक कोमलता थी। आवाज में आन्तरिकता की छाप। दो-चार बात करने पर पता चला कि उसके बच्चों की मां नहीं है। उन्हें लेकर ब्रह्मपुत्र की इसी रेत पर यह नन्हा-सा संसार बसाये हुए है।

दुनिया के लोग कितने भले लग रहे हैं। इतना प्यार, स्नेह, सहानुभूति। मन काफी हरा हो आया। धन्यवाद-सूचक दो-चार बात करने के बाद चाय की कीमत चुका, लगभग घंटे भर बाद बोट पर लौटा। टिकट मास्टर से पता चल गया था, जहाज आने की आशा नहीं है। अगर आये भी तो सुबह पहुंच सकता है। चाय की पेटियों की दो कतारों के बीच की संकरी राह से अपनी जगह को आगे बढ़ गया।

भुने चावल वाली मंडली अब खर्राटे ले रही थी। नेपाली परिवार का पहले का वह गाना बीच में सप्तम पर पहुंचकर हमारे कानों में गूंज रहा था। अब वही अष्टम पर पहुंचकर करवटों और लम्बी जम्हाइयों में बदल रहा था।

वह फिल्म मैगजीन भी आराम से पड़ी थी—लड़के की छाती पर। वह बेचारा रात का साथी मिल जाने पर बिलकुल निश्चिन्त-सा हो गया था। सिरहाने बैठी बहन जरूर मेरी ही बाट जोह रही थी। मुझे देख, आहिस्ते-आहिस्ते उसे जगाया—वरुण, चाय नहीं पीयेगा? उसकी आवाज में न कोई व्यस्तता थी, न काम में भी कोई अस्वाभाविकता ही। समझ गया, उसे आत्मविश्वास है, और वह दूसरे पर भी आस्था रखती है। मेरा संकोच काफी हद तक मिट गया।

वरुण, मैंने पुकारा।

हम तीनों चाय पीने बैठे। मिट्टी के तीन सकोरे दूकान से ही लेता आया था। उन दोनों ने सूटकेस से नारियल के लड्डू और नाश्ते की कुछ चीजें निकालीं। मैं अपना हिस्सा लेकर कुछ अलग हटा जा रहा था, तभी आपत्ति हुई। लाचार मैं भी वहीं बैठ कर खाने लगा।

—अपना बिस्तर ठीक से फैला लो वरुण, मच्छरदानी भी लगा लो, तुम भली भांति सो सकोगे।

—जहाज नहीं आयेगा? मुझे लगा, दोनों एक साथ कह उठे थे।

—अब क्या होगा वरुण? बड़ी चिन्तित-सी होकर बहन पूछ बैठी। चिन्ता आदमी को खूबसूरत भी बना सकती है, इस पर मुझे पहले विश्वास न होता, पर उसकी इतनी चिन्ता की वजह?

—क्या कोई बहुत जरूरी काम है, वरुण? जोरहाट में? अचानक मेरी जबान से बात निकल गयी।

—कल चाहे जैसे भी हो, जोरहाट पहुंचना ही है। इस बार सीधे बहन ने मुझे जवाब दिया, हालांकि सिर झुकाये ही।

—कल की व्यवस्था के बारे में कल ही सोचेंगे, है न वरुण ? मेरी बात से वरुण को एक बड़ा समर्थन मिला।

—जी, दीदी बेकार ही न जाने कैसी-कैसी बातें सोचा करती है।

—'नो वरी' तो लिखा ही है। तू भी तो मिडिल पास है, 'नो वरी' का मतलब क्या तुझे मालूम नहीं ?

—मगर 'कम शार्प' भी तो लिखा है न ? भाई के चेहरे की ओर देखते हुए कुछ लजीले ढंग से हंसकर कहा।

जीजा जी तो वैसे ही कमजोर दिल के आदमी ठहरे, जरा-सा सिरदर्द हुआ नहीं कि हाय, मरा, कहकर तुझे ही ढूंढ़ने लगते हैं। इसी कारण 'कम शार्प'।

कंदील के उजाले में देखा, उसका समूचा चेहरा सुन्दर ढंग से लाल हो उठा है। रुकना नहीं, 'कम शार्प' – इन शब्दों में भला कौन-सा रहस्य छिपा हुआ है ?

—कोई बीमारी हुई है क्या ?

जीजा जी का साइकिल-एक्सिडेंट हो गया था। अस्पताल में हैं। तार मिले दो दिन हुआ। मैं तो था नहीं, स्कूल बन्द होने पर कल ही घर पहुंचा। चाय-बागान की पत्तियों का मौसम है, इस कारण पिता जी भी छुट्टी नहीं ले पाये।

मेरे बार-बार अनुरोध करने पर वरुण ने बिस्तर फैला दिया। बड़ी कोशिश से तिकोना बनाकर मच्छरदानी लगा दी। बहन बिना कुछ कहे सो पड़ी। दो-चार बातें करने पर वरुण के परिवार के बारे में कुछ और बातों का पता चला। मेरा पता भी लिख लिया। कुछ देर बाद वरुण भी सो गया।

सारा काठ निबारी घाट सो रहा था। बोट भी नींद के जाल में ऊंघता हुआ करवटें बदलने लगा। कहीं टिकट मास्टर या खलासी की परेशान करने वाली जूते की आवाज बोट के सिरे तक साफ सुनायी पड़ी। पास के कगार से टूटकर कुछ मिट्टी हरहराती ढह पड़ी।

ब्रह्मपुत्र के उस पार काजीरंगा के अंधेरे में कोई शेर के शिकार के लिए घात लगाए बैठा है। दूर के बालूचर पर कांस और झाँबों के जंगलों के बीच, ब्रह्मपुत्र के फैले हुए काले से पानी के प्रवाह में कोई रहस्य सोया हुआ है। कुछ तारे इकट्ठे हो, यह रहस्य क्या है, जानने हेतु झांकते फिर रहे हैं। बोट के बिलकुल नजदीक किनारे पर बैठी उलझी-पुलझी बालों वाली धोबिन लड़कियां कपड़े झटक रही हैं—छप-छप-छपात्...

धत् ! अरे वे तो लहरें हैं ! लहरें !

लड़का याने वरुण टाउन के हाईस्कूल के नौवें वर्ग में पढ़ता है। पिता, वो नाम क्या बताया ? किसी चाय-बागान के चाय-घर में काम करते हैं। हेड-टी हाउस चाय-

बागान में ? हो भी सकता है। घाट से करीब दस मील की दूरी पर. है। बहन का विवाह हुए अभी डेढ़ साल हुए हैं।

मायके आये सप्ताह भर बीता नहीं कि बुला भेजा है। जरा-सी चोट आयी है। चोट तो जरा-सी है। लेकिन 'कम शार्प' लिखा है न। बिना देखे रह ही नहीं सकते। इड़: मेल है दोनों में—आज की रात डेढ़ साल पहले हुई होती तो ! और मुझे तो कोई साइकिल एक्सीडेन्ट नहीं हुआ है न।···धत्···

कंदील हवा के झोंके से बुझ गयी। अंधेरे में भी अच्छा ही लग रहा था। पर लगा कि ऐसे अंधेरे में जगे रहना उचित न होगा। तब दियासलाई जलायी। सिगरेट का एक अधजला टुकड़ा पड़ा था, उसे जला लिया और कंदील की ओर जलती तीली बढ़ा दी।

चौंक पड़ा। बहन की आवाज थी। अंधेरे में ही शायद नींद आ जाये।

—सोयी नहीं ?

—यों ही झपकी लग गयी थी। लेकिन नींद तो आ ही नहीं रही।

सचमुच ! कंदील नहीं जलायी। रेलिंग पर हाथ रखे जहाज आने की दिशा में तेज नजरों से देखता रहा। कंदील के उजाले से काम नहीं चलेगा। जहाज का उजाला लाना ही होगा।

उस तरह कितनी देर रहा हूंगा पता नहीं। अचानक एक हलचल मची। 'जहाज', 'जहाज', 'उजेला' आदि की आवाज के साथ टिकट की घंटी बजी और लोगों के चलने की 'धप्, धप्, धप्' आवाजें गूंज उठीं।

जल्दी में मैंने कंदील जला दी। बहन उठ बैठी थी। दोनों हाथों से हिला कर वरुण को जगाया। वरुण चौंक कर उठ बैठा।

जहाज आ पहुंचा है वरुण। मानो काफी हलचल और प्रतीक्षा के बाद एक बच्चा पैदा होने जैसा ही समाचार दिया हो। उन्हें बिस्तर बांधने को कहकर मैं टिकट लाने चला गया।

टिकट मास्टर का चेहरा देखते ही समझ गया कि कुछ दुर्घटना हो गयी है। जहाज से संकेत मिला है, उसकी मरम्मत करनी है। इसलिए टिकट देर से दिया जाएगा। लंगड़ाता-सा जहाज नजदीक आता जा रहा था। वरुण भी कुछ देर बाद आकर मेरे पास खड़ा हो गया। समाचार पाकर वह बहन से बताने फिर लौट गया।

सवेरा हो आया था।

मैं किनारे उतर गया। कुछ इंतजाम के बारे में सोचना होगा। इन्हें तो आज जोरहाट पहुंचना ही है। प्रातः कर्मादि के बाद एक कप कड़क चाय पीकर नींद की खुमारी मिटायी। गर्म-गर्म पूड़ियां बनवा कर तीन कप चाय बनवा ली। तभी जहाज आ पहुंचा। उससे दो-एक यात्री उतरे। देखा, वरुण एक और लड़के को साथ ले किनारे आ रहा है।

दादा-दादा, मामू आ पहुंचा। इसी जहाज से आ रहा है जोरहाट से। देखिये, मैं कह रहा था न, चिन्ता की कोई बात नहीं।

रात भर जागते रहने के कारण मामू परेशान-सा था। बहन के नाते का देवर होता है। वरुण का हमउम्र या उससे कुछ बड़ा होगा।

—जोरहाट की खबर कैसी है ? मामू की ओर देखकर पूछा ही था कि वरुण बीच ही में जवाब दे उठा—अच्छी है, हमें पहुंचने में देर हुई, इसलिए लेने को आदमी भेज दिया।

—लेने को आदमी, आखिर क्यों ?

—अगर आना चाहते हों तो ले आऊं और नहीं तो मैं ही जरा घूम-फिर आऊं, यही समझकर चला आया। इस बार मामू ने जवाब दिया।

—फिर, अब क्या करना है ?

—भाभी तो जाना चाहती है, चाहे जैसे भी हो, इसलिए नाव किराये पर लेकर जोरहाट की पहली बस पकड़नी है। जहाज रेत में फंस गया था। कुछ पुर्जा टूट गया है, मरम्मत के बाद ही यह रवाना हो सकेगा।

इसलिए जहाज के छूटने में देर होगी।

तो फिर वरुण, दीदी के नहाने-धोने का इंतजाम करके दोनों जाओ। मैं चाय ला रहा हूं।

वरुण ने हाथ का फ्लास्क मुझे थमा दिया, दोनों लौट गये। घंटे भर बाद दूकानदार के एक लड़के के हाथ चाय-नाश्ता लिये जब बोट पर पहुंचा तब वरुण की दीदी नहा-धोकर मामू के साथ बड़ी प्रसन्नता से बातें कर रही थी। रात की चिन्ता की छाप चेहरे पर नहीं रह गयी थी।

—तुम्हें तो पहले देखते ही मेरी छाती धड़कने लगी थी।

—मैं तो कह ही रहा हूं अगर जाना चाहो तो बागान लौट जा सकती हो।

—न-न, मुझे वहां पहुंचाकर तुम दोनों लौट आना ! तुम आ गये, यह अच्छा ही हुआ। कल रात एक सज्जन ने बड़ी मदद···

मैं पहुंच गया था। जल्दी में ओढ़नी को और जरा-सा खींचकर वह मानो शर्म से लाल हो उठी थी।

दूकानदार का लड़का चाय रख लौट गया।

—वरुण गया कहां ? मैंने मामू की ओर देखा।

—हाथ-मुंह धोने गया था, अब तक लौटा ही नहीं। मामू की भाभी ने जवाब दिया। साथ ही वह चाय डालने में जुट गयी। मामू और मुझे चाय-नाश्ता आगे बढ़ा दिया।

—मुझे नहीं, मैं तो अभी-अभी पी आया हूं।

—फिर पीना पड़ेगा।

—वाह ! चाय का गिलास लेकर कुछ हट आया।

—नाव का इंतजाम कर आया हूं। जल्द तैयार हो जाना ही अच्छा है। चाय ठंडी हो जायेगी, वरुण की बाट जोहने की जरूरत नहीं। क्यों मामू ?

—हां, जल्द करना चाहिए। जोरहाट की बस नौ बजे शिलघाट पहुंचती है। नाव वाला वरुण-मामू के गीत की लय के साथ-साथ नाव खेने लगा।

"ब्रह्मपुत्र गंगा माओ
बताहे हालिछे गाव
मथुरापुरी लै याओ
काषे चपाइ दिया नाव"

ब्रह्मपुत्र—गंगा मैया के शरीर हवा में हिल रहे हैं। नाव पास ले आओ। मुझे मथुरापुरी जाना है।

भाठी की ओर बहते पानी में नाव बाण-सी चल पड़ी। वरुण की दीदी और मामू की भाभी (मेरी ? मेरी क्या लगती है ?) की ओर देखा। वह तल्लीनता से वरुण के मामू के गीत सुन रही थी। गीत की लहरी के संग-संग उसके होंठों पर लगी हुई हंसी चुपचाप चढ़-उतर रही थी। और सिन्दूर की वह बिंदी। कैसी दग-दग लाल आग है वह। सुबह की धूप में चेहरे का रंग शुद्ध सोने-सा नहीं, कच्ची हल्दी की गांठ-सा हो रहा है। सोने का रंग तो बेजान है।

एक सुखी परिवार की तस्वीर। सास, ससुर, देवर—तुझे देखे बगैर तो रह ही नहीं सकता···और एक पति।

इसी कारण 'कम शार्प'। तू तो मिडिल पास है, 'नो वरी' का मतलब क्या नहीं जानती ? फिर सीखना पड़ेगा।

इस बागान से उस बागान नौकरी ढूंढते आवारा जीवन में बहुत दिनों बाद एक दिन, बहुत-सी रातों में वह एक रात आयी थी। नाव शिलघाट के जितने समीप आती गयी, मन उतना ही सूना सूना-सा लगने लगा।

अचानक नजर पड़ी, वरुण की दीदी की बिन्दी खून जैसी दमकने लगी है। नाव से सिर को जरा-सा झुका देने के कारण लहरों के प्रतिबिम्ब समूचे चेहरे पर जगमगाते जा रहे थे। लग रहा था, लहरें मानो बिन्दी का बंटवारा कर ले जाना चाहती हैं।

नाव घाट से आ लगी—शिलघाट।

चाय-पर्व समाप्त करने के साथ-साथ बस आ पहुंची। सरकारी बस—घड़ी मानकर चलती है। जब हम विलग हो रहे थे, वरुण और उसकी दीदी बस की सेकेंड सीट पर जा बैठे। वरुण के चेहरे पर प्रशंसा का भाव खिल उठा था।

—कभी जोरहाट आयें तो दीदी के यहां भी आयें। पता तो याद है न ? वरुण की दीदी ने भी आन्तरिकता भरी दृष्टि से वरुण से ज्यादा बातें कह डालीं। और काठ-निबारी घाट से होकर आयें तो हमारे बागान के घर आयें जरूर। यह केवल मौखिक

शिष्टाचार ही नहीं, दिली आमंत्रण भी था। बस का हार्न बजा। दीदी ने हाथों को कपाल से लगा धीरे से नमस्कार किया। प्रति नमस्कार किया मैंने। लेकिन मामू ? वह कहां है ?

मामू, तो चाय की दूकान से उठा ही न था। ड्राइवर से कहकर झट चाय की दूकान में गया, मामू को भेजने के लिए। मामू तो सिगरेट पर मानो सिलाई मशीन चला रहा था।

—ओ—मामू, बस जा रही है।

सिगरेट फेंककर मामू खड़ा हो गया। बड़ा अच्छा लगा आपसे मिलकर…उत्तेजित व्यस्तता से मामू मेरी तरफ देखता रह गया।

—फिर कभी मिलेंगे, वह बस चली—अब जाओ। जैसे मैंने एक तरह से, धकेल ही दिया। फिर हार्न की आवाज ! मामू आवेश से पसीना-पसीना हो रहा था।

—जाऊं ? जाऊं तो भला कैसे ? भैया की तो मोटर दुर्घटना हुई थी। दूसरे ही दिन सबकुछ खत्म हो गया। मैं तो अब तक अभिनय करता आ रहा हूं।

मामू उछलकर बस पर सवार हो गया।

बस के पहिये तेजी से घूमते हुए कामाख्या पहाड़ की मोड़ में ओझल हो गये।

(1955)

2 अपराजित

सबके आखिर में सिलाई मशीन आ गयी। इस बार भूधर शइकीया ने दर्जी के काम में हाथ लगाया।

जिन्दगी में उसने न जाने कितने सारे काम किये। खुद उसी का कहना था जूता सिलाई से लेकर चंडीपाठ तक। पहले-पहल की शुरुआत हुई थी चाय-बागान में। जिगरी दोस्त मनेश्वर शर्मा का साथ था उन दिनों। वह चढ़ती जवानी के दिन थे।

बहुत दिन पहले की, आज से लगभग 20-25 साल पहले की बात थी। उन दिनों के चाय-बागान और आज के चाय-बागानों में जमीन-आसमान का अन्तर हो गया है। उन दिनों साहब 'चले जा' कहे तो चले जाना होता, 'रह' कह देता तो बस रह गये।

आल राइट बाबू। तुमारा काम से हाम खुशी हाय। हाम दस टाका इन्क्रीमेंट देगा। हाम कोम्पानी को लिखेगा।

ऐसे गोरे साहबों के साथ काम करना पड़ता था उन्हें। भूधर शइकीया का वेतन भी बढ़कर पचास रुपया माहवार हुआ था। बाहरी आमदनी भी ढाई सौ थी। भूधर औरत दफा का मुहर्रिर था। उन दिनों बागान के बाबुओं में चुगला-चुगली काफी चलती थी। किसी तरह से साहबों का प्रियपात्र बनें, सबका लक्ष्य यही था।

चुगली लगा दी थी छोटे किरानी ने। औरत बाबू ने अपने गांव के घर टिन का बंगला बनवाया है। हारमोनियम खरीदी है, ग्रामोफोन खरीदा है. यह कम्पनी को दिवालिया बना देगा। एक दिन साहब मोटर से शहर गया था। सामान खरीदने में मदद के लिए छोटे किरानी को भी साथ लेता गया था। मोटर पर से ही उसने गांव में बांस की झुरमुट की ओट में भूधर शइकीया का जगमगाता नया बंगला दिखा दिया था।

एक दिन जब भूधर चाय की पत्तियां तोड़ने वाली औरतों की पत्तियों का वजन ले रहा था तभी अचानक साहब, वहां हाजिर हो गया। एक औरत की पत्तियों का वजन हो रहा था। वजन में सात सेर था, लिया गया था दस सेर। साहब ने भांप लिया था लेकिन मुहर्रिर भूधर ने भी अंग्रेजी दस के अंक पर झट सात का अंक बिठा दिया। पर साहब का संदेह तो मिटा नहीं।

एक दिन दफ्तर में उसे बुलवाकर साहब ने बातचीत के सिलसिले में पूछा—औरत बाबू, हाम देखा टुम घर बनाया हाय।

—जी, साब, बनाया है।

—टाका काहां में मिला ?

—फादर का बहुत लैंडेड प्रापटी है, मनी है।

—लेकिन तुम बहुत पैसा खरच किया।

—सर्टेनली, वो फादर का मनी है।

—लेकिन···लेकिन···साहब ने होंठों पर जीभ फेरी। अब भूधर शइकीया के गरज उठने की बारी थी।

—साब, तुमने चुगली सुनी है। यू थिक्स आई ऐम ए स्टील ? क्या मैं स्टील हूं ? सचमुच गरज उठा था भूधर शइकीया।

—नो-नो, तुमको काहे को चूर बोलेगा। लेकिन···

साहब की बात लेकिन में ही रह गयी। मेज पर से रूल उठाकर वह साहब की ओर दौड़ पड़ा।—"लेकिन-फेकिन क्या मार रहे हो। सट् अप् और आइ मैल डाई यू गरज सुनकर बड़े किरानी और छोटे किरानी दौड़ आये! झपट कर रूल पकड़ लिया। शइकीया ऐसा करना ठीक नहीं, साहब से भला ऐसा बर्ताव!

—कोई तलवे चाटता रहे साहब के। आई० डी० भूधर शइकीया, माइंडेट नेवर, साहब, मुझे अभी चले जाने दो।

हनहनाता हुआ निकल गया था शइकीया।

उसी बागान में पुरुष-दफा का मुहर्रिर था मनेश्वर शर्मा। वह तो आज भी वहीं काम कर रहा है। साहब ने उसके पावने रुपये और डिसमिस की नोटिस दे दिये। उसने सोचा था, भूधर माफी मांग लेगा। वह स्वाधीन देश का इन्सान है, हैंड-शेक करने पर ही मामला खत्म। तिसपर देखने में तो भूधर का कोई दोष भी नहीं और काम में भी अच्छा है। मगर शइकीया नहीं आया। आखिर महीने भर बाद साहब ने खुद बुलवा भेजा। भूधर आया, लेकिन कहने पर भी नौकरी नहीं ली। बाद को कभी-कभी बागान के ठेके का काम लिया करता।

—तबसे तुमने फिर नौकरी नहीं की, है न चाचा ?

भतीजा कणटिलो हमेशा यहां तक तल्लीनता से सुनते रहकर कहानी के ठीक जगह पहुंचने पर इसी ढंग से पूछ लेता। कणटिलो हाईस्कूल के दूसरे वर्ग में है। बड़े भाई का इकलौता लड़का। भाई-भाभी दोनों का देहान्त हो जाने पर निःसन्तान चाचा-चाची का इकलौता बनकर परिवार की सदस्य संख्या तीन बनायी है।

भूधर शइकीया अब तक हजारों बार इस घटना की चर्चा कर चुका है। कोई-कोई बड़ा आदमी अगर वहां पहुंचता तो चाय तम्बाकू आगे बढ़ा कर उससे पुराने दिनों की यही चर्चा छेड़ देता। चाय के साथ तामोल (पान और कच्ची सुपारी) की भांति ही यह घटना और दूसरी घटनाएं आ जाती हैं।

कभी-कभी और कोई पास न रहे तो भतीजा ही फंदे में फंस जाता और उस दिन उसका गेंद खेलना बंद हो जाता।

—नौकरी ? अरे, न जाने कितनी नौकरियां मिली थीं। स्काट साहब का सर्टीफिकेट जब पास था तो परवाह क्या थी ? परन्तु नौकरी तो की नहीं। नौकरी गुलामी है।

स्वाधीन कारोबार, व्यापार में लग गया। तामोल पान ले बैल गाड़ी से पन्द्रह मील दूर पालखावै हाट चला जाता। इस अंचल के बहुत से व्यापारी साथ रहते। सब लोग शाम को ही यहां से रवाना हो जाते। उन दिनों हमारे यहां चरण नाम का नौकर था, जो गायों की रखवाली करता।

—हां, चरण की मुझे कुछ याद आती है। वह काफी दिन तक यहां था न?

—वहीं चरण तुझे गोद में, बकुची में ले घुमाया-फिराया करता, क्या भूल गया है उसे?

चाची चिलम में तम्बाकू डाल चाचा के हुक्के पर रखने आते समय चिलम में फूंक मारती हुई भतीजे की बात का जवाब देती।

चाची का चेहरा भरा हुआ था। गेहुआं रंग, चेहरे पर चेचक के दाग। कुछ मोटी नाटी-सी।

चाचा जब बात करता रहता तो प्रायः चाची भी निकल आती और बीच-बीच में टीका-टिप्पणियां और भूल-सुधार भी जोड़ देती। पिछले तीस-बत्तीस साल में बहुत कुछ बात सुधार-संशोधन करने लायक भी हो गयी है। चाय-बागान की बबुआइन बनना हमारी किस्मत में ज्यादा दिन लिखा न था। ये तो साहब को रूल का डंडा दिखाकर चले आये। इसके बाद अटर-मटर, अड़गम-बड़गम, न जाने क्या-क्या काम कर चाची को आसमान पर बैठाये रखा है।।

चाची की जबान में क्षोभ, अभिमान भरा रहता। भूधर शइकीया हुक्के को घटनों से टिकाये सिर झुकाये तल्लीनता से गुड़गुड़ाने लगता। मानो कोई ग्वाला बड़ी भैंस दुह रहा हो। देर तक चरत्-चरत् आवाज करने के बाद एक बार पूरा बल लगाकर ऐसा लम्बा कश खींचता है कि एक बार तो हुक्के की नली ही चटख गयी थी। कम-से-कम चाचा का ऐसा ही विश्वास रहा है।

इसके बाद उसके नाक-मुंह से कल-घर की चिमनी जैसा धुआं निकलने लगता। कणटिलो जानता है, कल-घर चलने लगा है, अब बगैर पानी मिले यह ठंडा न होगा।

वह झट उठकर चाय की केटली चूल्हे पर रख देता। चाय पीकर चाचा फिर सिलाई में जुट पड़ता।

हमेशा सुनी-सुनाई हुई वही बातें, हमेशा होने वाली एक-सी घटनाएं। वही भूधर शइकीया सिलाई-मशीन लेकर अब सिलाई के काम में जुटा है। जिन्दगी में उसने आखिर क्या नहीं किया? हर बार कोई न कोई विशेष घटना होती ही रहती है।

वैसे सीने के लिए तो खास कुछ रहता नहीं। घर के फटे कपड़ों की भी हालत ऐसी है कि उनके और फटने की कोई जगह ही नहीं बची है। कप पर कप चाय, साथ-साथ तम्बाकू पीता भूधर शइकीया सिलाई-मशीन के पास ही जमा रहता। पास ही तकली ले बैठी रहती पत्नी। अपने काम में जब किसी का मन नहीं लगता, तभी पालखावै हाट की चर्चा चल पड़ती।

—चाचा, रात को पालखावै हाट जाने में तो बड़ा अच्छा लगता है न ? केंरा कृष्ण दादा कहते हैं। कभी-कभी मौका पाकर कणटिलो शुरू कर देता।

—फु ! केंरा कृष्ण ! वह भला जानता ही क्या है ! उस दिन तो उसकी जैसी हालत हुई थी, थर-थर, दप्-दप् कम्पमान !

कणटिलो हमेशा जो प्रश्न पूछा करता है। वही चलता—प्रश्न वह फिर दुहरा देता। वह क्या था चाचा ? बाघ ?

चाची भी ठीक इसी प्रश्न की ताक में रहती।

चाचा के उत्तर के पहले ही चाची का प्रश्न मेंढक की भांति उछल आता—बाघ ? कहां का बाघ ? अरे, सा···ह···ब ! हुंह, चाचा को क्या तू ऐरा-गैरा समझ रखा है ? साहब को एक ही बार में···

—हः, रुको-रुको, बीच में मूसरचन्द न बनो। मैं कुछ कह रहा हूं, और यह कुछ ले बैठी।···

चाची अपने खुले मुंह को धीरे-धीरे बंद कर देती, फिर काफी देर तक तम्बाकू पीने के बाद चाचा भाषण शुरू कर देता।

—असली हाटखोला तक पहुंचने में और मील भर रह गया था। तभी सबेरा हो आया। हम वहीं रुककर हाथ मुंह धो, चाय-भात आदि का इंतजाम किया करते, क्योंकि पास ही एक सोता भी था। गाड़ियों को राह के एक किनारे खड़ी कर पीछे का उठौना लगा बैलों को खोल देते। केंरा कृष्ण हम दोनों की चाय का इंतजाम करता। चरण लकड़ी-फूस आदि जुटा देता।

—उस दिन सभी चाय-नाश्ता ले खाने बैठे थे तभी एक मोटर की आवाज सुनायी पड़ी।

—उन दिनों सरकारी सड़कों पर बहुत कम मोटरें चला करतीं। हुस्स करती निकल आयी एक फस्ट क्लास गाड़ी, किसी साहब की। राह के उसी हिस्से में हम इकट्ठे बैठे थे। मोटर किसी गाड़ी के जुए में जरा-सी लग गयी। जगह कुछ ढलवां थी, गाड़ी फिसल कर नाले में जा पड़ी।

—यू, डैम, फूल, ब्लाडी, नेटिव···निगार-साहब ने मोटर रोक दी थी।

केंरा कृष्ण का तो आज भी यही विश्वास है कि वह मोटर इंजन की ही आवाज थी, साहब की नहीं। साथ ही लोगों का शोर-शराबा भी बंद हो गया।

केंरा कृष्ण तो हिन्दुस्तानी-असमीया शब्दावली लगाकर इस स्थिति का बड़ा लच्छेदार वर्णन करता है—"हियां भागिल, उहा भागिल, इधार भागिल, उधार भागिल, कौन काहा फरिं-छिटिका दिले मालूम नहल रे कणटिलो। तोके आरू कि बलिम ?" (याने, यहां भागे, वहां भागे, इधर भागे, उधर भागे, कौन कहां पतिंगों जैसे छिटक गये, कुछ पता नहीं चला। तुझसे भला क्या बताऊं रे कणटिलो।)

केंरा कृष्ण का यह वर्णन कणटिलो को भली-भांति याद है। फिर ?

फिर क्या हुआ चाचा ?

उस पर बैठे मैं और केंरा कृष्ण धान का पुआल बिछा, चाय और कोमल-चावल की मूढ़ी का नाश्ता कर रहे थे। हमारी ही गाड़ी सबसे पीछे थी। केंरा यद्यपि गिलास को हाथ से पकड़े हुए था फिर भी गिलास पर से चाय-पानी छलक-छलक गिर रहा था। मैं वहां था इसी डर से दूसरों के भागने पर भी वह भागा नहीं, फिर भी उसका समूचा शरीर कांप रहा था। मैंने चरण से पूछा—चरण, ठीक है न ?

उसने दिखाया बिलकुल टीक है। वह उसी पर बैठा हुआ है, याने उसी लाठी पर। साहब ने देखा, लोग भाग गये हैं। गुस्से से आग-बबूला होकर वह गाड़ियों के उठौनों पर लतियाता हुआ घूमने लगा। वहां देखा, कि मैं तब भी बैठा हुआ हूं। सड़क के किनारे झाड़ियों के जंगल में अचानक धप्प-सी आवाज हुई। मैंने तिरछी नजर से देखा, वह तो केंरा कृष्ण है, शायद मेरे सिर के ऊपर से उछल भागा था। उसकी चाय का गिलास उछल कर दूर जा गिरा और साहब के बूटों को भिगो दिया।

मैंने तब तक साहब की तरफ देखा ही न था। आराम से एक सिगरेट बना रहा था।

—यू ब्लाडी उल्लुक : गाड्डी हियां —कौन राखने बोला ? उछल कर मैंने चरण की लाठी उठा ली। आई, डी, भूधर शइकीया, हुम डु यू टाकिंग, यू ब्लाडी फूल ? घपस् से गाड़ी के जुए पर लाठी पटक दी।

वह दौड़ पड़ा मोटर के पास—मैंने आगे बढ़कर रोक लिया। लाठी उसके सिर पर तनी हुई थी। चरण भी इसी बीच गाड़ी का उठौना खोलकर उसे उठाये मेरे पास आ गया।

—एक कार्ट तूने फेंक दी है, जल्द रुपया दे। नहीं तो तेरी मोटर का चूरा कर डालूंगा।

कहकर मैंने मोटर के एक पहिये पर जोर से पटक दिया उठौना उसे डरवाने के लिए। साहब बैग से महारानी मार्का पांच रुपये चुपचाप फेंककर पों-पों करती मोटर चलाता हवा हो गया।

—उन्हीं रुपयों में से एक रुपया है शायद चाची के हाथ !

यहां तक पहुंचकर पारम्परिक प्रथा के अनुसार भूधर शइकीया पत्नी की ओर देखता हुआ, उससे जो उत्तर हमेशा सुनता आया है, वही सुनना चाहता।

—पिछली बार की तंगी में वही रुपया भुनाकर क्या धान खरीद खा नहीं गये थे ? उस सन्यासी ने हाथ देखकर बताया था कि कहीं, कोई उपाय-आदि करने से हो सकता है कि कुछ हो भी सके—तो एक रुपया भुनाकर नृसिंह थान पर फूल चढ़ा आयी थी।

'कुछ' का मतलब है—बाल-बच्चे, साफ न कहने पर भी सब समझ जाते हैं।

तभी से व्यापार करना छोड़ा। इसके बाद ठेके, दूकान, काठ-मिस्तरी, सिल्क का कैनवेसर और न जाने कितना क्या-क्या किया। हां, तो अब ला दे, कणटिलो जाकर चिलम में तम्बाखू सजा लो।

नदाइ सातोला उसी राह से जा रहा था। शइकीया ने पुकारा—एक दम लगाते जाओ, भैये !

जल्दी-जल्दी अन्दर आ गया—बूढ़ा सातोला।

—मुझे भी बड़ी जल्दी है। लेकिन एक बात है, मैं चिलम से ही पीऊंगा।

—चिलम से ही किसलिए ?

—किसलिए ? क्या पता नहीं तुम्हें ? तुम सिलाई-मशीन का काम कर रहे हो। बिरादरी के लोग तुम्हारा हुक्का-पानी बंद कर देना चाहते हैं। तुम्हें आज खबर देंगे।

—डैम योर बिरादरी, सातोला भाय ! सिलाई मशीन की पटरी पर उंगली से ठोकरें मारकर शइकीया कह उठा।

—हुंह, दो अक्षर अंग्रेजी जान ली तो क्या इसी से गालियां भी दोगे ? यही अंग्रेजी तो काल हो गयी। सभी एकाकार म्लेच्छ हो गये। भला कहो तो, असमीया लोग कब, किस जमाने में दर्जी का काम करते थे ?

—सुनो, सातोला भाय, तुम लोग ठहरे कुएं के मेंढक। आखिर देश को आजाद करोगे तो कैसे ? विदेशी ने इस देश को खाया है, खा रहे हैं और खायेंगे और देखना, ये साहब ही देश पर शासन करते रहेंगे।

—अरे, वे सब ठहरे देवांग पुरुष, ईश्वर ने उन्हें राजा बनाकर ही सृष्टि की है। हमारे ये लोग भला क्या राजा बनेंगे ? चिलम को दोनों हथेलियों के बीच लेकर पीता हुआ सातोला कहता गया।

—तो फिर तुम लोग मुझे बिरादरी से बाहर कर देना चाहते हो ? लेकिन याद रखो, यह भूधर शइकीया है, भूधर शइकीया रामधर शइकीया के घर का बच्चा। किसी की परवाह नहीं करता ! मैं अपना काम करता हूं, खाता हूं। किसी की चोरी-डकैती नहीं करता।

—क्यों हल चलाकर खेती करने में क्यों नहीं लगते ?

—जमीन नहीं है, न बैल ही हैं। आखिर करें तो क्या ? नौकरी के पैसे से मकान भर को ही सफेद कर सका हूं। मैं हल चलाने की बात पर हंसता नहीं। मेरा कहना तो सिर्फ इतना है कि हमें सिर्फ हलवाहा भर बने रहने से काम चलने का नहीं। दो-चार आदमियों को लिखना-पढ़ना, अखबार पढ़ना-लिखना आदि करना होगा। आजकल लोगों को सभी काम जानना चाहिए। तुम देख नहीं रहे हो, चारों ओर हमारे लोगों की रोजी रोटी छिनती जा रही है। सिर्फ हल चलाने के अलावा और सभी काम दूसरों के हाथ चले गये।...जमीन भी उन्हीं के यहां गिरवी है। चिलम हुक्के से लगाकर शइकीया कहता गया।

तुम कह तो रहे हो सच्ची बात ही। मगर क्या करें, बिरादरी छोड़ें तब तो। ठीक है, मैं अब चलूं। सातोला चले जाने को खड़ा हो गया।

—ठीक है, जाओ। बात सिर्फ यही है कि कभी कुछ सिलाना हो तो ले आना।

दिन बीतते गये। परन्तु अंकल कंपनी के सिलाई कारखाने की सुई एक और खाना भी आगे नहीं बढ़ती। गांव के लोगों का सिलाई का काम बहुत कम होता है।

कभी मारकीन कपड़े का एक मेखेला सिला ले जाते हैं, उससे साल भर चल जाता है। सिलाई देते हैं एक आना। एक पंजाबी कमीज सिलाते हैं, डेढ साल पहनते हैं। देते हैं—आठ आने, छह आने। वह भी शइकीया से नहीं सिलाते, पुराने जानकार दर्जी के पास जाते हैं। ये लोग तकिये का गिलाफ नहीं लगाते, दरवाजे पर परदे नहीं लगाते और खिड़कियां तो उनके घरों में होती ही नहीं।

—तू जिसके हाथ नया कपड़ा देखना, बस उसी को पकड़ लेना। मैं दो आने कम में सी दूंगा। तुझे भी कमीशन दूंगा अगर ऐसा न कर सका तो सिलाई-मशीन का मासिक किराया एक रुपया भी मुश्किल से आ पायेगा।

कणटिलो ने इस उपदेश का मर्म ग्रहण कर अपने एक सहपाठी को फंसा लिया। उसकी मां ने अपने करघे पर एक धारीदार कपड़ा बुन दिया था, एक कमीज सिलानी थी। माप के लिए एक पुराना कमीज भी वह लेता आया था।

कपड़ा मिलते ही शइकीया दर्जी बनकर बैठ गया। दिन-रात लगे रहकर जो कमीज बनी, वह चाचा-चाची-भतीजे के समन्वित प्रयास का फल कही जा सकती है। देखने में तो चीज वैसे बुरी नहीं थी लेकिन दोनों के बांहों में ज्यादा मिलवटें पड़ने के कारण कमीज झूलते हुए चमगादड़ जैसी बन गयी।

उसके बाद से आर्डर आना बिलकुल बंद हो गया।

कणटिलो घर में जो पैंट पहना करता वह पहले नीले रंग की थी। पन्द्रहों-रंगों की चकत्तियों की पैंबन्दों के हमलों से वह सर्कस के जोकर के ढंग की पोशाक में बदल गयी।

आर्डर बंद हो जाने पर भी दिन-रात खर्र्-खर्-खर्-कट्-कट्—मशीन की आवाज बंद नहीं हुई।

कणटिलो अपनी पैंट के रूपान्तर का नजारा देख-देखकर कहा करता, दर्जियों की दूकान में लम्बे कोट-पैंट पहने आदमी की तस्वीरें टंगी रहती हैं। उनके कारखाने में भी वैसी ही एक तस्वीर लाकर रखनी चाहिए।

— फुः यहां भला सूट पहनने वाले कितने हैं ? पहना था अगर तो इसी आदमी ने, उस जमाने में जब वह कान्ट्रेक्ट किया करता था। साहब के साथ बातों में फट्र-फट्र अंग्रेजी निकलती थी, अंग्रेजी में उसे 'सूट' कहते हैं।

—क्यों चाचा, तुम क्या सूट सीना नहीं जानते ?

—नहीं जानता ? भला कौन-सा काम जानता नहीं यह भूधर शइकीया ? आई, डी, भूधर शइकीया। सभी काम आंखों देखे, हाथ के काम हैं। न जानने की भला कौन-सी बात है ?

—हाफ-पैंट पहने आदमी की एक तस्वीर ले आना चाचा, यहां स्कूली लड़के हाफ पैंट ही पहना करते हैं।

—खरीद लाने की जरूरत किस लिए है भला ? बना लेने पर ही तो होगा।

—तुम तस्वीर बनाना भी जानते हो, चाचा ?

—कहा न, सभी आंखों देखे, हाथ के काम हैं।

चिलम में फूंकती हुई चाची वहां घूम आती, अरे, चाचा को मालूम न हो, ऐसा कौन-सा काम है रे ! उन दिनों तो ये अटेरन ले, ढरकी चलाकर करघे पर भी दो-एक चक्कर लगा देते थे। कपड़े पर बेल-बूटे बनाना भी सीखा था।

कणटिलो कहीं से एक मोटा गत्ते का कागज ले आया। रंगीन पेंसिल, लाल स्याही, काली स्याही का इंतजाम कर चाचा को सौंप दिया।

चाचा तस्वीर बनाने वाला है हाफ पैंट पहने एक लड़के की। एक रविवार को दोनों तस्वीर बनाने बैठे। लम्बाई में कटे उस गत्ते पर एक सफेद कागज गोंद से चिपका दिया। उस पर पहले एक छोटा-सा वृत्त बनाया, आंख, नाक, मुंह की जगह माप के मुताबिक एक-एक बिन्दी की निशानी लगा दी। उसके बाद कणटिलो से हाफ पैंट पहनकर खड़े हो जाने को कहा। कणटिलो पहली बार किसी कलाकार का माडल बनकर खड़ा हो गया।

कलाकार की पेंसिल की नोंक से कणटिलो के शरीर का एक-एक अंग कागज की फोटो जैसा उभरने लगा। अब पैंट का रंग नीला बनाकर ऊपर एक धारीदार कमीज पहना देने पर ही तो तस्वीर पूरी हो सकती है।

—मुंह जरा और ऊपर होना चाहिए था शायद ? इसकी ठुड्डी तो जैसे है ही नहीं। चाय का कप लाते हुए चाची ने कहा।

—ठहर-ठहर, अभी हो जायेगा। तुम लोग जब कपड़े में बेल-बूटे बनाती हो तो कितनी तीलियां उठेंगी, कितनी गिरेंगी, क्या मैं कहने जाता हूं ? मुझे भी तुम कुछ न कहना।

—मगर क्या कणटिलो का चेहरा ऐसा ही है ? हम तो जिसका नमूना लेती हैं, हूबहू उसी के बेल-बूटे बनाती हैं।

—कणटिलो जैसा होना नहीं चाहिए न, उसका तो नमूना भर होना चाहिए। करघे पर बेल-बूटे बनाना और आदमी की तस्वीर बनाना एक ही बात नहीं है, समझी !

तभी चन्द्र आ पहुंचा। शङ्कीया का भानजा। रविवार की हाट में जा रहा था। राह में मामा के यहां हो लिया।

चाय-पान खा-पीकर जब वह चलने को हुआ, चाचा भतीजे दोनों की दृष्टि चन्द्र की कमीज की निचली जेब पर पड़ गयी। एक छोटी-सी पोटली मानो बड़ी ही सावधानी से छिपाये लिये जा रहा था। दोनों साथ ही ऊंची आवाज में कह उठे—यह क्या है, चन्द्र ?

—वह क्या लाये हो, चन्द्र भैया ?

चन्द्र ने कुनमुनाते हुए संकोच से कहा—

भाभी ने यह कपड़ा बुन दिया है। पंजाबी कमीज सिलवानी है।

—भाभी ने बुन दिया है। अच्छी बात। अब मैं अगर सी दूं तो क्या जात चली जाएगी ?

—जी नहीं, मतलब बात है कि यह कपड़ा मरसराइज के ताने और बढ़िया सूत से बुना है। लाचार चन्द्र ने अधबनी तस्वीर की ओर देखते हुए कहा—एक बढ़िया फैंसी कमीज सिलवानी है, आप तो सिलाई के पैसे लेने में बुरा मानेंगे।

पैसे की बात वैसे बहाना थी। असली बात यह थी कि उसे कपड़ा खराब हो जाने का पूरा डर था।

—पैसे नहीं लूंगा मैं ? कौन कहता है। मैं पैसे नहीं लेता ?

—चोटी पकड़, घूंसे लगाकर पैसे लूंगा। मेरा तो व्यापार ही है यह। धान ही दे देना। पैसा नहीं चाहिए।

यह तो और बड़ी मुसीबत है। दूना धान ले आयेगा और कहेगा—अरे कभी और कुछ सिलवा लेना।

—लिख तो कणटिलो, लम्बाई सैंतीस, छाती छत्तीस, गला सोलह, हाथ···

—कमीज में कालर लगानी है।

—पंजाबी कमीज में फिर कालर कैसी ? मैंने अनेक सज्जन देखे, बहुत से साहब-सुहबों को भी देखा, लेकिन पंजाबी कमीज की तो कोई कालर नहीं देखी।

चन्द्र ने अपनी किस्मत को धिक्कारा। न जाने किस बुरे समय में वह बाजार निकला था।

तस्वीर का काम अधूरा छोड़ दिन-रात चन्द्र के कपड़े पर शल्य-क्रिया आरम्भ हो गयी। चार दिन में पंजाबी कमीज रेडी हो गयी। देखकर चन्द्र को भला ही लगा। भानजे को पहनाकर मामा-मामी सभी निरीक्षण करने लगे। कालर लगा दी है बिलकुल टाई-कालर। बायीं बांह लम्बी और फैली-सी। बगल में झूलकर गठरी-सी हो जाती। दाहिनी बांह कुछ छोटी और चोंगे जैसी। दोनों बांहों को जरा लपेटकर पहनना। लोग समझेंगे कि शर्ट पहने हुए है।

खड़ी टाई-कालर लगा दी है। एक मन धान देना और कुछ चीजें सिलवा लेना।

इसके बाद काफी दिन तक कोई काम नहीं आया। घर में भी कोई फटा कपड़ा-लत्ता नहीं था। न-न, तस्वीर तो अधूरी है न अभी।

एक सप्ताह में तस्वीर पूरी हो गयी।

चाचा-चाची व भतीजे ने मिलकर तस्वीर का उद्घाटन किया। हाफ पैंट पहने हुए एक लड़का। मुंह गाल सभी एक वृत्त में घुसे हुए। स्याही लगाकर बालों को झंबरा बना दिया गया था। चेहरे ने ही समूचे कागज का आधा हिस्सा घेर लिया था, अतः लाचार होकर शरीर को छोटा करना पड़ा। नतीजा यह हुआ, दोनों अधूरे ही रहे। पैंट नीली, कमीज लाल-नीली धारीदार। पृष्ठभूमि में लाल-नीला रंग। बाउण्डरी के चारों

ओर घेरकर लिखा था—अंकल कम्पनी का सिलाई-कारखाना। सभी काम सस्ती दर पर किये जाते हैं; परीक्षा प्रार्थनीय।

तस्वीर को दीवार में लगा, कुछ दूर एक कुर्सी पर बैठा, हुक्का गुड़गुड़ाता हुआ भूधर शइकीया तल्लीनता से तस्वीर देखने लगा।

कुर्सी की बांह पकड़ खड़ी हो मिसेज शइकीया भी देख रही थीं। तस्वीर के बिलकुल समीप कणटिलो शइकीया खड़ा था।

तस्वीर की कमीज भी बिलकुल उसके दोस्त की उस आधे बांह की कमीज जैसी ही थी। दोनों बांहें भी उसी की जैसी। सिकुड़न ज्यादा होने के कारण दोनों बाहें चमगादड़ों की भांति ही टंगी सी हैं।

चाचा ने बताया कालर तो खास अंग्रेजी टाई-कालर जैसी ही है। बिलकुल चन्द्र भैया की कालर जैसी। पैंट भी कणटिलो की जैसी। यह पूरा लड़का ही कणटिलो है—हाथ-पैर और चेहरे के अलावा।

(1959)

3 चारा

शिमी पोखरी में शोल मछलियों की तादाद बढ़ गयी है। बहुत से लोग सिर्फ बंसी डालकर ही बड़ी तगड़ी शोल मछलियां पकड़ रहे हैं।

बेणु अपने हमउम्र साथी चेनि को यह समाचार देने दौड़ पड़ा।

लेकिन चेनि को उससे पहले ही समाचार मिल चुका था।

दोनों लाचार थे, बंसी तो किसी के पास न थी। बड़े भाई या दूसरे लोग अपनी-अपनी बंसी छूने भी नहीं देते थे।

—मैं धागा बट सकता हूं। बंसी के लिए बांस की दो छिकुनिया तीन महीने पहले ही काट रखी है। गांठों को जरा सेंक-सांककर सीधे कर लें तो काम चल जायेगा। बेणु ने राह सुझायी।

मगर धागा कहां से मिले? मूंगे का धागा चाहिए। जैसी पुष्ट, तगड़ी शोल मछलियां हैं, बंसी में सन या मूंगे का धागा न हो तो आसानी से तोड़ ले जायेंगी।

चेनि ने हाथ से संकेत कर मछलियों का आकार-प्रकार दिखा देने के साथ ही बेणु ने मानो मछलियों को देख ही लिया। पेट की ओर लाल रंग की लम्बी-सी और—पीछे की ओर क्रमश: पतली-सी शोल मछलियां। बीच-बीच में काले धब्बे—लम्बाई में शुरू हुई सिर की खोपड़ी, पानी तले पूंछ हिलाती हुई मानो बाण की भांति चली आ रही हैं। उसकी बंसी के चारे के पास कुछ क्षण ठहरकर जांच रही है उस चीज को। क्षण भर में वह उसे लपककर खा लेगी, साथ ही उसकी वह टामसि बंसी सीधे उसके पेट में चली जायेगी। शोल मछली चारे को कुतरती नही—सीधे निगल जाती है। साथ ही पुंडग याने बंसी के धागे में लगा छर्रा पानी में चला जायेगा—काफी नीचे—साथ ही छर्रे के पास बुलबुले निकलेंगे—ओ-न-न—अब रुक नहीं सकते। बेणु मूंगे का धागा जुटायेगा। मां के यहां मूंगे का धागा है। उसी में से एक धागा चेनि को भी देगा। मगर बात है—मूंगे के सूत का धागा बटना आसान नहीं। अगर ज्यादा चक्कर पड़ जाए तो कहीं मोटा, कहीं महीन होकर खराब भी हो सकता है।

दोनों गहरे सोच में डूब गये।

सिर्फ एक रास्ता है।

गांव के हरिबोल दादा के पास जाकर सिर झुकाना। अरे उस खूसट बुड्ढे के पास भला कौन जाये? इतनी गालियां बकता है और ऐसी भद्दी-भद्दी बातें करता है कि सुनकर शर्म आती है। बेणु ने नाक सिकोड़ी।

—उतना तो सहना ही होगा। नहीं तो काम निकलेगा कैसे आखिर।

बुड्ढे के वहां जाकर उसके लिए चाय बना दें और अच्छी तरह एक चिलम तम्बाकू सजा दें तो बस काम बना समझो।

दोनों मूंगे के धागे की ढरकी ले बुड्ढे के यहां पहुंचे। गांव में हरिबोल बूढ़े के नाम से जाना-पहचाना, बच्चों का वह हरिबोल दादा गांव के सिरे पर अकेले रहता है। सुबह उठते ही हरिबोल कहकर वह जो पुकार छोड़ता है वह गांव के दूसरे सिरे तक गूंज जाती है। सबको पता चल जाता है—हरिबोल बूढ़ा जग उठा है। सबेरा हो चुका है। सिर के लम्बे-लम्बे बालों को चारों ओर से कंघी कर ऊपर चढ़ा, जूड़ा बना लिया है। जूड़े पर एक फूल लगा रहता है। लम्बी दाढ़ी छाती तक फैली हुई। कपाल पर लाल-सफेद तिलक। उसके मुंह से हरि नाम सिर्फ सुबह एक बार और शाम को एक बार सुनायी देता है। शेष हर बात के साथ-साथ एक-एक भद्दी बात जुड़ी रहती है। गांव के लड़के उस चिड़चिड़े बूढ़े को दूर से ही हरदम खिझाते रहते हैं—उस समय बूढ़े की हर बात के बाद दो-दो भद्दी बातें और गालियां रहा करतीं। हालांकि उसके रहने पर लड़के चुप ही रहते। गांव की बहू-बेटियों का चाल-चलन, पहनावे-ओढ़ावे में राह-घाट में कहीं जरा भी हेर-फेर देखी कि बूढ़े की जबान से संस्कृत के लावे छूटने लगते कि वे कभी-कभी तो रोती हुई घर लौटतीं। फिर भी बूढ़े का कोई बुरा नहीं मानता याने उससे नाराज होकर किसी का काम नहीं चलता। लड़कों के स्कूली सामान, बांस के चोंगे, स्केल, स्कूल के हाथ के काम, टोकरी, चलनी, बूढ़ा ही बना देता है या बनाना सिखला देता है। औरतों के करघों के सामान, बेल-बूटे बनाने के औजार, तकुवे, अटेरन आदि महीन काम यह बूढ़ा न कर दे तो होते ही नहीं। कहीं भाओना (शंकर देव प्रवर्तित—नाटक-अभिनय) हो तो अभिनेताओं की मुकुट-मणि, भीम, दुर्योधन आदि की गदाएं, अर्जुन, कर्ण आदि वीरों के धनुष-बाण, तरकस यह सब बनाने का भार बूढ़े पर ही रहता है। किसी के यहां पूजा-त्योहार होने पर महा-प्रसाद (मूंग-चने आदि का प्रसाद) भिगोना, धोना, केले के दोने बनाने आदि का काम बूढ़े के जिम्मे रहता। इनके अलावा रोग में या हवा-बतास लग जाने पर पानी फूंक देना, तेल फूंक देना, सूजी गांठ पर चूना फूंक देना, मछुआरों के पोलो (मछली पकड़ने का औजार) और बंसी फूंक देना, परीक्षा के दिनों बच्चों की पेंसिल कलम फूंक देना आदि काम तो दिन भर लगे ही रहते। इसी कारण गांव के लोग बुड्ढे को धान-चावल तथा अन्य सामान देकर मदद करते। बूढ़े की गायें दूसरे की गायों के झुंड में रख चरवाही कर देते—इसके लिए बुड्ढे की बारी बताकर कोई उस पर दबाव नहीं डालता।

चालीस साल पहले भरी जवानी में बूढ़ा इस गांव में पहले-पहल आया था। चालीस साल के उम्र वालों से लेकर गांव के महीने भर के बच्चे तक का ऐसा कोई नहीं जिसके जन्म के समय मां ने बूढ़े के हाथ का या घर के चबूतरे की मिट्टी धुला चुल्लूभर पानी न पिया हो। भूकंप होने पर घर के चबूतरे से दांतों से कुरेदकर मिट्टी लानी होती है—जिसे बूढ़ा मंत्र पढ़कर फूंक देता है। कहते हैं—उसका पानी पीने पर प्रसव में

आसानी होती है।

बूढ़े ने विवाह नहीं किया। गांव के लोगों ने बड़ा जोर लगाया था, लड़की भी मिली थी। एक बार जब लोगों ने काफी बल लगाया तो बुड्ढा गांव ही छोड़ चले जाने को तैयार हो गया। बुड्ढे का कोई दुश्मन नहीं, अगर होता भी तो उसके चरित्र के बारे में उंगली न उठा पाता। मगर बिना बुलाए बूढ़ा किसी के यहां नहीं जाता। किसी के साथ ज्यादा मेल-जोल भी नहीं रखता। छोटे-बड़े का भेदभाव समझे-जाने बिना ही मुंह पर सबको खरी बात सुना देता है। लोग तो बूढ़े को कुछ दिमाग का ढीला ही समझ बैठे हैं। कुल मिलाकर बूढ़े की अतीत कथा और जवानी से लेकर पैंसठ साल की उम्र तक वह सभी के लिए रहस्य बने ही रह गये। अगर बुढ्ढे की कोई अतीत-कथा थी भी, तो वह अतीत में ही रह गयी थी—बंसी से शोल मछली पकड़ने की भांति कोई उसे बाहर ला नहीं सका है और न लाने की कोशिश ही की है!

सबेरे उठकर बूढ़ा घर-बार झाड़-पोंछकर, आंगन-बुहार, गाय दुह, गाय को राह के किनारे लम्बे पगहे से बांध देता। लोग जब अपनी गायें खोलते तो वह भी खोल देता। गुहाल नाम से जो बरामदा है, उसे भी झाड़-बुहार कर चिकना कर रखता। इसके बाद नहा-धोकर दीवार में लगी बेदी के सामने प्रणाम कर चाय के इंतजाम में जुट जाता। यह चाय ही बुड्ढे के जीवन का प्रमुख आकर्षण है। दूसरों की बनायी चाय में उसे जायका ही नहीं मिलता। पीतल की एक नन्ही लुटिया ही आज चालीस साल से चाय की केटली का काम करती आयी है। गिलास भर उबले पानी में अंदाजन गुड़ डाल देता। कुछ देर बाद उससे फेन निकाल देता। एक तेजपात और जरा-सी नमक डालने के बाद उसमें चाय की पत्ती छोड़ देता। अंत में कड़ाही में उबालकर गाढ़ा किए हुए दूध में से दो चम्मच मिलाकर बांस की छननी से पीतल के गिलास में छान लेने पर ही बुड्ढे की चाय तैयार होती। उस दिन भी 'ए राम कृष्ण' कहकर चाय की घूंट जैसे ही लेना चाहता था, दरवाजे पर बेणु और चेनि आ पहुंचे। हरिबोल काका—यह धीमी आवाज सुनते ही बुड्ढा सिर उठाकर उनकी तरफ तिरछी निगाह से देखता रहा।

—गधों की औलाद गधे कहीं के, बिलकुल खाने के वक्त पर हाजिर होते हैं। कुछ करने के समय तो कोई मकोड़ा भी नहीं आता।

चेनि हाथ में सूखी पतली लकड़ियों का बोझा लाया था, उसे चूल्हे के पास रख दिया। बेणु के हाथ में दो चिलम भर खमीरा डाली हुई तम्बाकू। उसने युगों पुरानी बांस के चोंगे में तम्बाखू रख दी। अपना मुंह चाय के गिलास से ही लगाए हुए बुड्ढा उनकी करतूत पर नजर डाल रहा था, खमीरा डाली हुई तम्बाकू की खुशबू उसकी नाक तक पहुंच चुकी थी।

—अरे नासपिटे कहीं के, तम्बाकू क्या और कुछ ज्यादा नहीं ला सके थे? लकड़ी बस उतनी-सी ही मिली? जा, उस लोटे में जरा-सी चाय है, दोनों बांटकर पी लो।

बुड्ढे ने एक हाथ से लोटे को आगे बढ़ा दिया। बुड्ढे की ऐसी सामान्य बातचीत में

भी सामान्य रूप से ही कोशों में न मिलने वाले शब्द तो रहते ही हैं।

वेणु और चेनि ने एक-दूसरे की नजरों में नजर मिलायी। इसके बाद लुटिया की चाय डालकर परम परितृप्ति से पीकर एक ने तम्बाकू सजा दी, दूसरा कटोरा-गिलास धो लाया।

बुड्ढे की चाय की खुमारी टूटी नहीं थी। दो-दो बंसियों के धागे बनाने होंगे, दो डंडे छीलने-तराशने होंगे, चारा ढूंढ़ना होगा, फिर एक मील दूर के शिगी पोखरी को पहुंचना है। इसी के बीच नहाने-खाने जैसे दो गंदे काम करने हैं। बुड्ढे की खुमारी के ढीलेपन से दोनों ही अन्दर-अन्दर जल-भुनकर बुड्ढे को लगातार गालियां दे रहे थे।

अंत में जब बुड्ढे ने तम्बाकू का हुक्का ले अच्छी तरह से दो कश लगा लिये तो उन लोगों ने उसके सामने मूंगे के सूत की दो ढरकियां और साथ लायी एक तकली बड़ी विनम्रता से आगे बढ़ा दीं।

चिलम के गिरे पर धप् से आग जल उठी।

—बन्दरों के बच्चो, ऐसे तो कभी पैर डालने नहीं आते, तुम्हारे आते ही मैं समझ गया था कि कुछ न कुछ सोचकर ही आये हो। मैं तो आजकल बंसी भी नहीं डालता न मछली ही हाथ से छूता हूं। क्या नहीं जानते तुम ?

—दादा, तुमने ही तो पहले हमें अपने बंसी डालने की बात बतायी थी न ? तुम जब जवान थे, तो तुम्हारे देश की दीघली झील में बंसी से रोहू मछली तुमने फंसायी थी, कछुआ पकड़ा था। ये बातें तो तुम्हीं ने बतायी थी।

यह बात दोनों ने मिलकर कहीं। शायद दोनों पहले रट आये थे।

—अरे बन्दर के बच्चो, आजकल तो तुम लोगों ने दो-एक गरई-चेंग मछली भर पकड़ना सीखा है, तुम लोगों जैसी उम्र में तो मैं रोहू मछली भी फंसाकर निकाल देता था। मेरी बंसी से पकड़ी मछलियां ढोकर लाने के लिए उठाने वाले को जाना पड़ता था। बूढ़े की चिलम की आग लुहार की भट्ठी की भांति धप्-धप् कर जलने लगी थी। चेनि ने दोनों ढरकियों, तकली और बुड्ढे की कलमी छुरी दीवार पर से उतारकर बुड्ढे के पास रखी। बुड्ढे ने और भी दो-चार गंदी गालियां बकने के बाद छुरी वेणु की ओर बढ़ाकर कहा-- जाकर तीन छोटी-छोटी खूंटियां काट ला।

बुड्ढे ने तीनों खूंटियां – बैठने की जगह से बाहरी दरवाजे की ओर आंगन में सीधे दस हाथ की दूरी पर गाड़ दीं। हर खूंटी में मूंगे के तीन-तीन धागे लगाकर---तकली में गांठ बांध घुमाते हुए वेणु को पकड़े रहने के लिए दिया, जिससे वह ढीली न हो जाए। चक्कर पूरे हो जाने के बाद तीनों के सिरे मिलाकर तकली के सिरे पर की अंकुसी में बांध दिया। इतना हो चुकने पर अब असली डोरी बनायी जाएगी। बूढ़े के निर्देश के अनुसार चेनि ने अपनी तर्जनी और मध्यमा उंगलियां तीनों धागों में इस तरह से घुसाये रखी जिससे धागे एक-दूसरे के साथ लग न जायें। तकली से हाथ भर दूर इस तरह से उंगलियां रखकर उससे एक बित्ता हटकर तकली की ओर तीनों धागे बायें हाथ की

तर्जनी और अंगूठे के नाखून से इस तरह से दबाए रखा जिससे धागे की पेंच उस दबी जगह से आगे बढ़ न पाए। अब बुड्ढा तकली घुमाता रहेगा। तकली को अपनी ओर खींचकर इशारा करते ही, चेनि उंगली का दबाव ऊपर की ओर इस ढंग से छोड़ देगा मानो उछाल दिया हो। उसके साथ ही कंट-सी आवाज कर दाहिने हाथ की उंगलियों तक चक्कर पहुंच जाएगा। चक्कर के पहुंचने की जगह को फिर पहले की भांति बाएं हाथ से दबाकर दाहिने हाथ की उंगलियां बित्तेभर दूर रखनी होती। समूची डोरी को ऐसा ही करना होता। किसी तरह अगर दबाव फिसल जाए, या समय पर छोड़ा नहीं जाए, या छोड़ने पर कंट की आवाज न निकले, तब तो धागा बटने का काम तमाम और शोल मछलियां पकड़ी जा चुकीं समझना चाहिए। इनके अलावा उनके चौदह पुरखों को उल्टे एक-एक पिंड मिल जायेगा। इसी कारण जिसके कलेजे में वजन नहीं, वह कम-से-कम बुड्ढे के पास धागा बटवाने नहीं आता।

—मेरे बटे हुए धागे का बंसी के सामने यों ही टन-टन करते रहना होगा। जब बड़ी रोहू मछली उस बंसी को पकड़ेगी तो आधे मील दूर से ही लोग समझेंगे कहीं टोकारी (इकतारा जैसा बाजा) या वीणा बज रही है। सन के सूत की डोरी हो तो वह कनकनाती रहेगी।

तकली घुमाते हुए बुड्ढा बातें भी घुमाया करता। कहते हैं कि एक बार वह अपनी जांघ पर धागा बट रहा था तो कुछ रोयें उसमें उलझ गये। तब से बुड्ढा अपनी हथेली पर ही तकली घुमाया करता है।

—दादा, जो रोहू मछली फंस जाने पर तो बंसी खींचनी नहीं चाहिए न? चेनि ने पूछा। हालांकि चेनि को बात मालूम थी फिर भी बुड्ढे का मन खुश करने के लिए यह व्यवस्था थी।

—हुंह, कहकर बुड्ढा मुंह फुला, तकली घुमाता रहा। उन्हें पता था कि अब बुड्ढा सारी बातें बक जायेगा। हालांकि बुड्ढा उन्हें सम्बोधित न कर किसी अदृश्य तीसरे व्यक्ति से कहता गया—बड़ी बंसी महखुटी झील के बीच डालकर टामसि बंसी किनारे-किनारे लगाये रहो। शोल, छोटी मोह, गबूसियां आदि जो मछलियां फंसेंगी, समझ लो कि उसी से एक वक्त के खाने का सामान निकल आयेगा। थोड़ी देर बाद देखोगे कि बड़ी बंसी की डोरी हिल रही है। बस—बंसी की डंडी उठाकर डोरी ढीली करते रहो। मछली उसे खीचती हुई ले जायेगी। बीच में दो-एक बार किनारे की ओर खींच लेना अगर मछली जोर मारे तो फिर ढीले छोड़ देना। फिर खींचना। सन् के सूत की डोरी कन्-कन् करने लगेगी। ऐसा लगेगा कि अब टूटी तब टूटी। इधर-उधर खेत-खलिहानों में रहने वाले लोग आवाज सुनते ही समझ जायेंगे कि मछली फंसी है—बिना बुलाये खुद ही मदद करने के लिए आ पहुंचेंगे। कभी-कभी मछली बंसी को आदमी समेत पानी में खींच ले जाती है। लेकिन हजार हो—आखिर है तो मछली ही। कितनी उछल-कूद, खींचतान करेगी? बड़ी बंसी गले में फंसी है। कभी न कभी चित्त होकर पानी के ऊपर

आ ही जायेगी।

मगर कहीं कछुआ फंसा हो तो और ज्यादा मुसीबत। कछुआ किसी तरह नीचे जाकर एक बार अड़ जाए तो फिर उसे ऊपर उठाना मुश्किल है। वैसी हालत में डोरी को मजबूती से खींचे रहना ही होगा। डोरी ढीली हो जाए तो कछुआ कुतर कर तोड़ ही डालेगा।

वेणु पास ही बैठा दादा के मुंह की ओर देखता हुआ बातें सुन रहा था। बुड्ढे को अचानक गुस्सा आया। अरे उल्लू के पट्ठे, 'सोन बरीयाल'[1] कहां है?

वेणु चौंक कर दौड़ पड़ा।

पहली डोरी बटकर लगभग पूरा हो चुका था। 'सोन बरीयाल' का एक पौधा लेकर बेणु लौट आया। पौधा बड़ा-सा था। बुड्ढा फिर आग-बबूला हो उठा। तुझे छोटा पौधा नहीं मिला, अरे औरत का अंग-चटोरा। इससे तो हो गया। अरे, तू जा रे बकरे का बच्चा! 'बकरे का बच्चा' याने चेनि भी दौड़ पड़ा। डोरी बटकर पूरी हो गयी थी। चेनि के पीछे-पीछे वेणु भी भागा। कुछ देर बाद दोनों 'सोनबरीयाल' के दो छोटे-छोटे पौधे लेकर लौटे। डोरी तकली में बंधी हुई ही थी। बुड्ढे ने खींचे रखी थी। चेनि कुछ पत्तियां हाथ में लेकर उनसे डोरी को एक सिरे से घिसने लगा। वेणु ने तीनों खूंटियों से धागों के तीनों सिरे निकाल कर बीच की खूंटी में एक साथ मिलाकर ढरकी की भांति घुमाते हुए लाकर दादा के पास पहुंचा।

बुड्ढे की गालियों पर बेणु ने चाय का पानी चूल्हे पर चढ़ा दिया। एक चिलम तम्बाकू भी सजा दी। दूसरी डोरी बटने का आयोजन भी पहले जैसा होने लगा। इसी मौके पर चेनि ने फिर कछुवे के शरीर में बंसी लगा दी,—अगर कछुआ जाकर नीचे अड़ जाए तो क्या होगा, दादा?

पोपले मुंह से बुड्ढे ने अंजुरी भर हंसी छोड़ी। है है रे, उसका भी तरीका है। उसने हुक्का-चिलम दीवार पर टांग देने के लिए वेणु की ओर बढ़ा दिये। तकली में सूत घुमाते हुए दूसरी डोरी का काम शुरू किया।

—उसका कोई मंत्र भी है क्या, दादा? वेणु ने फिर हुक्का-चिलम दीवार पर टांग कर पूछा—हां, मंत्र भी है। तुम सब आजकल के अंग्रेजी पढ़े-लिखे छोकड़े क्या मंत्र पर विश्वास करोगे? तुम सबके सब बिलायती हो गये। मछली बंसी का चारा खाये इसका भी मंत्र है। बुड्ढे ने डोरी की बटाई ठीक हुई या नहीं एक बार जांच ली। इसके बाद दोनों हथेलियों के बीच फिर तकली रखकर डोरी बटने लगा। खींच-पकड़-छोड़-कंट, सांप की भांति घुमाव के चक्कर आगे बढ़ने लगे।

—तो फिर कछुआ पकड़ने का मंत्र भी है क्या? बेणु ने दुहराया। मिट्टी के फूटे घड़े की गरदन या एक बांस की कटी गांठ साथ ले जाना चाहिए। बंसी के बीच से उसे

---

1. मूंज जैसा एक हल्का पौधा, जिसके डंठल से छर्रा बनाते हैं।

घुसा देने पर वह जब कछुवे के पास पहुंचता है तब कछुआ अड़ना छोड़ देता है। बस यही है मंत्र।—मैंने उन दिनों जब उस बड़े कछुए को फंसाया था, तीन-तीन मर्दों को उसने चित्त कर दिया था। दिन के लगभग दो बजे से रात के दस बजे तक लड़ाई चलती रही। पर, 'लरत-सुभट नहीं मानहिं हारी।'

उस कछुवे को तीन-तीन आदमी बड़ी कठिनाई से उठाकर उठा लाये थे। समूचे गांव ने उसे खाया था। अरे, बंसी और सीसे का टुकड़ा लाये हो या नहीं—बंदर के बच्चो ?

उन दोनों ने समझा था कि यह पिछला वाक्य भी कछुवे फंसाने के साथ की बात ही है। क्षण भर बाद चौंक कर पैंट की जेब से निकालकर दियासलाई की एक डिबिया बेणु ने बुड्ढे के हाथ दे दी।

बंसी बांधने का काम भी डोरी बटने जैसा ही जटिल होता है। हालांकि उसकी रीति आसान है। गांठ तो वैसे साधारण-सी ही होती है मगर गांठ लगाने के बाद बंसी को हाथ से पकड़कर घुमाते समय अगर सावधान न रहे तो बंसी उंगली के सिरे पर चुभ जा सकती है। बंसी बांध, सीसे का टुकड़ा डोरी में बांधने के साथ-साथ चेनि ने बुड्ढे से कहा—दादा, आज हमारे साथ तुम भी चलो न।

अरे, मुझे तो बंसी छोड़े आज चालीस साल हो गये···।

दादा की आवाज कुछ कोमल-सी देख दोनों जोर से कह उठे—नहीं दादा, तुम सिर्फ पास बैठे रहना। हम तुम्हें पान-सुपारी और तम्बाकू देते रहेंगे। तुम पुराने दिनों के बंसी लगाने के किस्से सुनाते रहना।

—बंसी डाल कर बातें करने पर, क्या मछलियां फंसेगी भला ? मछलियां आदमियों की आवाजें आसानी से समझ सकती हैं और चौकन्नी हो जाती हैं।

असल में उन दोनों का गहरा विश्वास है कि बंसी लगाने के समय मछली फंसाने का मंत्र दादा जरूर जानता है। इसके अलावा दादा अगर डोरी को फूंक दे तब भी मछली फंस सकती है। उनकी धारणा थी, दादा को अगर साथ ले जा सकें तो उसके मंत्र की मदद से कितनी ही शोल मछलियां आसानी से पकड़ सकेंगे।

दादा ने चुपचाप बंसी बांधने और सीसा लगाने का काम पूरा कर दिया। बांधते समय दादा ने सिर्फ एक बार पूछा था—'भोग' एक हाथ या डेढ़ हाथ देना है ? कितने गहरे पानी में डालोगे बंसी ?

बंसी से छर्रा जितनी दूरी पर बांधा जाता है वही उसका भोग होता है। गहरे पानी के लिए भोग ज्यादा देना होता है।

—तो फिर तुम चलोगे न दादा ?

—मुझे तो बंसी छोड़े काफी दिन हो गये हैं।

लगा, दादा की जबान में एक करुण स्वर उभरता-सा रहा है। उन लोगों ने दादा को कभी इस रूप में देखा नहीं था। हमेशा फूला-फूला मुंह वाला चिड़चिड़ा आदमी—

इस क्षण में मानो कुछ अलग-सा लग रहा था। न कोई बुरी बात कह रहा है और न उन्हें गालियां ही दे रहा है। उन्हें बात पूछते कुछ डर-सा लगा। क्या जाने दादा फिर अपने उस पहले रूप में लौट आये। इस बीच बेणु चाय का पानी गर्म कर चुका था, दादा के दिखाये अनुसार अंदाजन गुड़ चाय-पत्ती आदि डाल चाय बना कर तीनों पीने बैठे।

—तुम लोगों ने चारा कौन-सा लिया है? बर्रे का?

—कुछ 'कोका टोप' का चारा तोड़ लेंगे। बेणु की गुहाल में बर्रे का एक छत्ता है, उसे भी तोड़ लेंगे।

—चार-पांच टुकड़े तोड़ लेना। कुछ गहरी जगह देखकर 'कोका टोप' का कुछ चारा तोड़ के पानी के नीचे डाल देना। वहां की कीचड़ कुछ घोल-घाल देने पर बड़ी-बड़ी भांगुर मछलियां भी आ सकती हैं। चाय की चुस्की लेते हुए दादा कहता गया।

—लेकिन शोल मछली? दोनों साथ ही चीख पड़े।

—शोल के लिए अगर मेंढक का चारा लगाया जाय तो अच्छा रहता है। इस कारण दो बंसियों की जरूरत होती है। कवई, भांगुर के लिए एक फूल-बंसी, गड्ढे में लगी रहनी चाहिए और शोल मछली फंसाने के लिए एक टामसि बंसी।

लेकिन उनके पास तो दो बंसियां हैं ही नहीं। दोनों का मन कुछ मुरझा-सा गया। चाहे जो भी हो एक-एक शोल मछली भी फंस जाए तो काफी है। पर दादा तो ऐसे खुले दिल से कभी किसी से बातें नहीं करता। दोनों बंसियों को दादा ने कुछ मंत्र पढ़कर तीन बार फूंक दिया। उन दोनों ने दादा से फिर एक बार चलने का अनुरोध किया।

बुड्ढा इस बार टूट-सा गया। आवाज बहुत ही कोमल हो गयी। उस दिन से मैंने बंसी में हाथ नहीं लगाया। जवानी के उन दिनों में भी एक दिन ऐसे ही शोल मछली फंसाने के लिए निकला था। कोका टोप का चारा तोड़ने के लिए एक पुरानी बाड़ी में घुसा था। लेकिन उसके बाद से फिर कभी बंसी की तरफ मुड़कर नहीं देखा।

—लेकिन क्या हुआ था, दादा? उसके बाद क्या हुआ था? उद्वेग व उत्सुकता से दोनों चीख पड़े। लेकिन सरकंडे की टट्टी के एक छेद से देखता हुआ दादा अपनी नजरें कहीं दूर टिकाए हुए था।

—वहां क्या हो गया था दादा? वहां क्या देखा था तुमने? बेणु के रोयें खड़े हो गये थे।

—वहां देखा बहुत से काले-काले चींटी के झुंड। बड़े सिर वाले 'टोका'—चींटे थे न? उन चींटों ने किसी चीज को बिलकुल ढंक रखा था। मैं पास चला गया। शायद उसे पहले दिन की रात को पौ-फटने के पहले ही किसी ने पास ही मिट्टी के नीचे गाढ़ रखा था। शायद रात को सियार ने उसे खोद निकाला था।···अब मेरे वहां पहुंचने के कारण ही शायद सियार भाग गया। लेकिन मेरे जाने में तो गांव में किसी का बच्चा पैदा नहीं हुआ था। वह जरूर किसी पाखंडी पापी का ही काम होगा।

दोनों पहले दादा की बातों का कोई मतलब ही नहीं समझ पाए थे। इसके बाद धीरे-

धीरे बात समझ में आने लगी। जब उन दोनों की समझ में यह बात आयी कि दादा जैसे बड़े आदमी ने एक ऐसी गुप्त बात कह डाली है, जिसे कहना उचित न था तो ऐसी ही एक बेचैनी की भावना से उनका मन छटपटाने लगा।

—दोनों आंखें निकली हुई, एकदम फैली-सी। मैंने उसी दिन से बंसी छोड़ी—दो दिन बाद वह गांव भी छोड़ा। अब तुम लोग जाओ बच्चो, तुम्हें देर हो जाएगी।

वे दोनों भी अब वहां से जाने में ही कुशलता समझ रहे थे। दोनों तेजी से वहां से चले गए। राह में कोकाटोप चारा तोड़ने की बात थी मगर—उसके लिए अब उन दोनों में किसी की भी उत्सुकता नहीं रह गयी थी। बेणु की गुहाल में जाकर बर्रे का छत्ता तोड़ते समय बर्रों की डंक से दोनों की देह दो-दो जगहें सूज गयीं। अन्त में दोनों कुत्ते की चाल रवाना हुए। पोखरे के पास पहुंचकर उन दोनों ने देखा कि दो आदमी बंसी डाले बैठे हैं। उन दोनों के जाने-पहचाने, पास के गांव के रहने वाले थे। इन दोनों को आये देखकर वे दोनों गम्भीर हो उठे। हालांकि सार्वजनिक पोखरा था और मछली भी पानी तले ही थी, फिर भी पहले से बंसी डाले हुए लोग नये आने वालों को प्रतिद्वन्द्वी ही मान लेते हैं। हालांकि वे दोनों जाने-पहचाने थे लेकिन वे बात करना नहीं चाहते थे।

अन्त में बेणु-चेनि के एक ने आवाज दी—कैसा समाचार है? लग रही है न, भैयाजी!

उन दोनों ने गम्भीर होकर मुंह जरा टेढ़ा करके ऊपर उठाया। मानो इनकी आवाज सुनते ही अभी उनकी बंसी में आकर फंसने वाली दो शोल मछलियां चौंककर भाग गयी हों।

बेणु और चेनि ने फिर कुछ पूछे बगैर एक की खोलई देखी। खोलई का मालिक गरज उठा। मछली देखने पर अगर नजर लग जाये तो? लेकिन उनके हाथ में बर्रे का चारा देखकर आवाज धीमी कर पूछा—बर्रे लाये हो? तब तो कुछ उम्मीद है?

उसके साथ का आदमी तभी गरज उठा—बारहों जगहों के लोगों ने बारहों तरह के चारे लगा-लगाकर मछलियों को बावला कर डाला है। पहले तो इसी शिंगी पोखरी में केंचुए का चारा लगाकर ही भांगुर, कवई मछलियों से खोलई भर-भर ले जाते थे।

पहले आदमी ने अपने साथी की बात पर मौखिक समर्थन तो दिया ही नहीं—बल्कि इनसे दो-चार बर्रे का चारा मांगा। इन लोगों ने भी खुशी-खुशी दस-बारह चारे दे दिए। उनका इरादा था, कहीं दो नये गड्हे बना लें। अगर इस तरीके से इन्हें हाथ न कर लिया जाए तो वे वैसा करने नहीं ही देंगे। क्योंकि उससे पानी में लहरें उठेंगी। इसीलिए उसके साथ वाले आदमी ने यद्यपि मांगा नहीं फिर भी उसे दस-बारह चारे दे दिए। उनके पास कोकाटोप का चारा था। इन दोनों ने भी कुछ ले लिया। इसके बाद तो बातचीत का दौर खुल गया। दबी जबान में बात करने की बजाये वे स्वाभाविक रूप से बातें करने लगे।

—आज शायद मछलियां फंसेंगी नहीं। बहुत कम आ रही हैं। पहले आदमी ने

आवाज दी ।--तिसपर आज वार भी है शनिवार। शनिवार को शिंगी पोखरी में मछलियां नहीं फंसतीं, यह तो देखी-पुरानी बात है । आज ही इसका प्रमाण मिल गया। दूसरे आदमी ने कहा ।

तिसपर कोने में बादल भी दिखाई दे रहा है। बादल की बू पाने पर भी मछलियां आतीं नहीं। अमावस-पूर्णिमा में भी नहीं फंसतीं। एक बार गलती से पूर्णिमा के दिन आकर दिन बरबाद किया था। दवा में पथ्य देने के लिए भी अगर एक चेंगली मिल जाती तो बात थी।

पहले आदमी ने अपनी बंसी को और एक गड्ढे में लगाकर पानी से ऊपर चला आया। उसकी पिंडली में सटकर आयी एक बड़ी-सी भैंस जोंक को अपनी थूक से अलग कर उसने फिर पोखरी में फेंक दी। पोखरी के पानी की घास पर झप्प की आवाज हुई। उसने हाथ धो एक बीड़ी जलायी. एक बीड़ी साथी को भी दी। बेणु और चेनि ने पान-सुपारी की पोटली निकाली। वे दोनों जब तक बीड़ी पीते रहे, उसी बीच बेणु और चेनि ने पोखरी में उतरकर दो गड्ढे बना लिये। यानी लगभग एक वर्ग हाथ जगह की घास हटाकर हाथ से वहां की कीचड़ को सानकर जरा-जरा कोका चारा तोड़कर पानी में उंगलियों से दो-तीन बार ठोकरें मारीं। कहते हैं, ऐसी आवाजें सुनकर मछलियां पास आती हैं। फिर बंसियां डाल अपने पैरों में लिपटी पतली जोंकों को अलग कर दोनों किनारे आ बैठे। पीछे की ओर पीपल का पेड़ था। दोनों उसकी छांह में बैठ गए। पीपल की एक डाली पोखरी के पानी के ऊपर कुछ आगे तक बढ़ आयी थी।

पोखरी के एक कोने में घासों की झाड़ के पास धप्-धप् की आवाजें आयीं, शोल मछली ! घास पर के फतिंगे आदि को पकड़-पकड़कर खा रही है। इधर बेणु और चेनि के दिल में भी शोल मछली उछल-कूद रही थी। बेणु का शरीर रोमांचित हो उठा। आ-आ-धप्-धप् से चारे को निगल डाल। हरि बोल दादा के मंत्र की दुहाई।—दादा का मंत्र भी क्या गुण नहीं देगा ?

एक-एक कर और तीन-चार बंसी वालों ने आकर पोखरी के दूसरे सिरे पर बंसी डाली थी। मछली के फंसने का असली समय आ पहुंचा था। कोई खांसता तक नहीं था। बेणु और चेनि की आंखें बंसी के बर्रे में लगी हुई थीं। कपाल पर रेखाएं उभर आई थीं। नसें तन गयी थीं। पलकें झपकती न थीं।

यहां-वहां से बंसी खींचने की आवाजें आ रही थीं। दो-एक कवई मछलियां निकल रही हैं। बेणु और चेनि की बंसियों में कभी-कभी दो-एक ठोकरें लगने पर भी चारा निकल जाता। असल में टार्मसि बंसी से शोल के अलावा पोखरी की और कोई मछली पकड़ी नहीं जा सकती। बंसी बड़ी होने के कारण दूसरी मछलियां उसे निगल नहीं पातीं। मछलियां उसे किनारे खींच ले जाकर जरा-सा कतरा निगल चारे को ही छुड़ा ले भागती हैं।

पास का आदमी बंसी खींचने के साथ-साथ डंडे को चार-पांच बार हवा में चक्कर

खिला देता। उसे 'कल-छिप' कहते हैं। कहते हैं कि ऐसा करने पर बंसी मछली के गलफड़े में फंस जाती है। चाहे जैसी भी बंसी हो, ऐसा करने पर छोटी-मोटी मछली का गलफड़ा फट जाता है और वह बहुत दूर जा गिरेगी। दूसरे सज्जन का बंसी खींचने का कायदा ही अलग था। कमर को टेढ़ा कर ऐसे मरोड़ कर बंसी खींचता, मानो कोई विशाल मछली ही उठा रहा हो। लेकिन बहुत होती तो नन्हीं-सी कोई कवई मछली ही या खाली बंसी होती। मगर चेनि का तरीका बिलकुल अलग था। उसकी बंसी का छर्रा जहां तीन बार हिला कि बस। वह बंसी को इस तरह से चक्कर लगाकर हिला देता कि उसका पतला-सा अगला सिरा कई बार कांप उठता। साथ ही पानी में बंसी यों हिलने लगती कि उसमें फंसी मछली बच नहीं पाती। एक बार वह एक मछली के पेट में बंसी लगाकर निकाल लाया था। इस बात पर हमेशा गर्व किया करता। उसे बंसी उछालनी नहीं पड़ती, उसे उठा लाते ही काम हो जाता है। इसी बीच उसने दो-चार कवई मछलियां पकड़ भी ली थीं। लेकिन बेणु बंसी उछालते-खींचते हैरान हो गया। उसे पानी में उतरना पड़ा था, इस कारण कई जोकों ने उसे चूसा। गुस्सा आ जाने के कारण दो-चार बंसी में गूंथकर गड़ही में डाल वह किनारे आ गया और घास पर पेट के बल लेट गया। साथ ही पान-सुपारी की पोटली भी खोल ली। पान-सुपारी के लालच से एक-एक कर चारों आदमी उसके पास आ गए। पान-सुपारी खाने के बाद दूसरे दोनों ने बीड़ियां जलायीं। सभी के चेहरों पर विरक्ति और हताशा थी। चर्चा चलने लगी, अब जल्द ही लौट चलना है।

तभी अचानक बेणु की नजर पड़ी। उसकी बंसी की डोरी हिल रही है, धागे में बंधा छर्रा दिख नहीं रहा है। कितने ही लोगों की आंखें उस पर पड़ीं। खींच, खींच, बंसी खींच। तीनों एक साथ चीख पड़े।

बेणु ने उस लेटने की भंगिमा से ही कुछ दूर घिसट, चक्कर लगा सीधे वहां जाकर बंसी खींच ली। बंसी की डंडी का सिरा झुक गया, मूंगे की नयी डोरी कन्-कन् करने लगी। तगड़ी शोल मछली का लाली भरा चितकबरा पेट फक्क से अब सबकी आंखों के सामने से दिख गया। मगर मछली तो ऊपर से नीचे आयी ही नहीं।

दस हाथ की बंसी की दस हाथ लम्बी डोरी पीपल की डाली में जाकर उलझ गयी थी। शोल मछली उसी डाली पर झूलती हुई फड़फड़ा रही थी।

ऐसे आकस्मिक संकट के लिए शोल मछली भी तैयार न था। सभी जोर से हंस पड़े। एक-एक कर सभी ने डोरी को छुड़ाने की कोशिश की। इस पेड़ पर चढ़कर डाली के सिरे पर पहुंचने की सामर्थ्य किसी की नहीं थी। इसीलिए बस एक उपाय यही है कि डोरी को तोड़ सिर्फ खाली बंसी लिये घर वापस जाओ और मछली की याद करते हुए एक वक्त खाना खा लो, बस हो गया। दूसरे सिरे पर एक आदमी ने ऊंची आवाज में कहा। दिन ज्यादा न था, सब लोग अपनी-अपनी बंसी ले चले। बेणु लकड़ी की कुछ बल्लियां उठा लाया और मछली की ओर निशाना लगा मारने लगा। एक बार एक बल्ली की जोरदार चोट से वह मछली डाली में एक उलटा चक्कर खा गयी। फलस्वरूप

डोरी एक चक्कर खुली। साथ ही मछली ने भी फड़फड़ाना बन्द कर दिया। डोरी अब डाली में सिर्फ एक ही चक्कर लगी थी। इस कारण उस मछली के बोझ से डोरी नीचे आ जाएगी ऐसा लक्षण दिखाई पड़ा। अब अगर बंसी से डोरी को छुड़ा दे सकें, या तोड़ दें तो मछली भी नीचे उतर आयेगी।

चेनि को बुलाकर उसने युक्ति समझा दी। चेनि अपनी बंसी के निचले हिस्से से वेणु की बंसी के बिलकुल सिरे से लगी डोरी पर चोटें करने लगा। डोरी कन्-कन् कर उठी। एक बार 'कट' की आवाज के साथ ही डोरी टूट गयी। कों-कों करती हुई मछली धप्प से नीचे जमीन पर आ गिरी। मछली मर चुकी थी। बल्ली की चोट उसके सिर पर लगी थी। उसका मुख फाड़ पेट से बंसी निकालनी पड़ी। लेकिन सबकी राय थी बड़ी-तगड़ी गोल है। खाने में मांस जैसी लगेगी। इसी बीच सब लोग अपनी-अपनी बंसी समेट-बटोर कर लौटने के लिए तैयार हो चुके थे।

मगर वेणु का सारा हौंसला ठंडा पड़ गया था। डोरी को फिर से बंसी में बांध, हाथ-पैर धोकर चलने को तैयार हो, वह कह उठा—चेनि, यह मछली अगर तुझे चाहिए तो तू ही ले ले, मुझे जरूरत नहीं।

—कैसी अजीब बात कहता है। सबने उसकी ओर मुड़कर देखा।

—धत्, क्या तू बावला हो गया है?

—अगर तू नहीं लेगा तो और किसी को दे दूंगा।

लाचार होकर चेनि ने मछली को एक पतली लच्छी में गूंथ लिया।

सारी राह दोनों चुपचाप चलते रहे। दादा के दरवाजे तक पहुंचते-पहुंचते शाम ढल आयी थी। दादा राह पर था। उसे मछली दिखाकर चेनि ने सारा वृत्तान्त वर्णन किया। वेणु सिर्फ खड़ा रहा। दादा ने जब सुना कि वेणु ने मछली चेनि को दे दीहै, तो वह एकटक प्रश्न-सूचक दृष्टि से वेणु की ओर देखता रह गया।

—यों ही, मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। दादा की नजरों की भाषा का उत्तर वेणु ने मुंह से दिया।

—आखिर क्यों? दादा ने वेणु की नजरों में नजर डालकर पूछा।

वेणु ने अपनी नजर मोड़ ली। शरीर को जरा टेढ़ा कर जवाब दिया—मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। आंखें न जाने कैसी फैली-सी हैं।

शाम के अंधेरे में दादा जैसे चुप हो गया। सिर्फ आंखें बरारी मछली की छाती सी सफेद होकर एकटक जगमगा उठीं। उन आंखों में कोई दृष्टि नहीं थी। वेणु उन आंखों की ओर देख न सका।

दोनों घर लौटे। बात करना चाहते थे मगर वे बातें छाती के पास हप-हप् कर उड़ी जा रही थीं। चेनि ने मछली उछालकर बांस की झुरमुट में फेंक दी।

उन दोनों के सीमित अनुभवों के बीच कई सवाल उमड़-घमड़कर बर्रे जैसे डंक मारने लगे। वे आंखें किनकी हैं? दादा से भला उनका कौन-सा संपर्क रहा है? (1958)

4 फादर एंड सन कम्पनी

कागज पर लिखे अक्षरों के किनारे लाल स्याही का बार्डर बना उसके चारों ओर बेल की गोंद लगाकर उसने एक गत्ते पर अच्छी तरह से चिपका दिया। बीच में एक छेद कर उसमें मोटे ट्वाइन का धागा लगा, इस ढंग से टांग दिया कि वह सबकी आंखों में पड़े। पास ही एक दूसरे गत्ते पर लगी एक और तस्वीर टंगी हुई थी। स्याही की लकीरों से बनी एक आदमी की तस्वीर, जिसके विशाल सिर पर एक साहबी टोपी थी, शरीर भी उसी अनुपात से लम्बा-चौड़ा था, लेकिन पैरों को मानो लकवा ही मार गया था। तस्वीर के उस आदमी ने एक घुमाव से अपने चेहरे को बिलकुल पीठ की ओर मोड़कर दुकान की तरफ हाथ ऐसे बढ़ाए रखा था कि अगर कोई आदमी सचमुच उस तरह से घुमा रखे तो उसका समूचा शरीर ऐसे मुड़ जाए, जैसा कि पेरते समय ईख मुड़ जाती है। गला ऐसा हो जाए जैसा कि गरदन मरोड़े हुए कबूतर का होता है। तस्वीर का वह आदमी हाथ फैलाकर असल में दूकानदार से बीड़ी का मुट्ठा मांग रहा था, क्योंकि उसके बन्द मुंह से पहले तो स्याही की नन्हीं-नन्हीं बूंदें, उसके बाद ये शब्द निकल रहे थे—'बीड़ी का एक मुट्ठा दीजिए।'

कुछ दूरी पर राह के बीचों-बीच खड़े हो गोपाल अपनी इन दो कला-कृतियों—साइन-बोर्ड और आदमी की तस्वीर का निरीक्षण करने लगा।

'एह-एह-एह,' किसी के क्षोभ और हताशा भरे भाव सूचक इन अव्यय शब्दों का उच्चारण सुनकर वह चौंक-सा पड़ा। बाप उसके पास खड़े होकर तस्वीर की तरफ देख रहा था। वह भी उसी तरह से बाप के चेहरे की ओर देखता रह गया। उसे मालूम है, बाप खुद ही कारण बता देगा, लेकिन उससे पूछने पर तो कारण जानने में काफी देर हो जाएगी।

—आज तीन सालों से अंग्रेजी स्कूल में पढ़-लिखकर बस यही सीखा है? हमारे जमाने में तो किंग्स प्रायमर की ए-बी-सी-डी ही हमने पढ़ी थी और वह भी अपने घर पर ही।

गोपाल की कोई दोष-त्रुटि दिखाने के पहले बाप यह भूमिका तो बांध ही लेता है। अतः असली त्रुटि कहां हुई है, इस बारे मे जानने के लिए आवश्यक धीरज धरने की आदत गोपाल को हो गयी है।

—'फादर एण्ड सन्स पंसारी की दूकान' जैसा कोई साइनबोर्ड भी कहीं रहता है? ओ, तब तो दोष है इस साइनबोर्ड में!

—क्यों? हमारे ट्रांसलेशन की किताब पर ही तो लिखा हुआ है 'भट्टाचार्य एण्ड

सन्स ?' फिर टाउन में उस बार जाने पर तुमने खुद नहीं देखा था क्या ?

—हः ! अरे, सन्स का मतलब होता है अनेक बेटे। एक के लिए तो सन-ही होगा न !

बेटे की पांचवीं कक्षा तक पढ़ी विद्या की अपेक्षा प्रायमरी की अंग्रेजी अब भी आगे है, इस आनन्द के आवेश में बाप की आवाज फिसलती-सी और ऊंची हो आयी थी।

गोपाल ने अपनी गलती महसूस की। मगर अभी हाल ही में तो ग्रामर के नम्बर का पाठ पूरा हुआ है। उस दिन का पहना वह कुरता ही घर में तो आज तक बदल नहीं पाया है। ऐसी स्थिति में आज नम्बर भूल जाने पर काम कैसे चलेगा ? अतः बाप से सन्स लिखने की सुविधा की व्याख्या वह करने लगा।

—आखिर में अगर एक स नं लगाया जाए तो एण्ड कं० लिखना पड़ेगा, नहीं तो लिखावट पढ़ने में लंगड़ी-लंगड़ी-सी लगेगी।

—स रहे या न रहे इससे क्या होता है ? गोबर की टोकरी पर भला पीतल की कलई किसलिए ? क्या पंसारी की दूकान में भी कोई सन्स-फन्स लिखता है कहीं ?

तभी गांव के दो आमंत्रित सज्जन वहां आ पहुंचे, उन्हें लेकर बाप दूकान के अन्दर चला गया।

गोपाल के दो स्कूली दोस्त भी दूसरी ओर से वहां आ पहुंचे। वह उन्हीं की बाट जोह रहा था। दूकान के उद्घाटन के उपलक्ष में उन्हें पिछले दिन ही आमंत्रित किया गया था।

—ओ गोपाल, अरे तूने तस्वीर भी बना दी ? दोनों हाथ कमर पर रखकर सिर को इधर-उधर हिलाता हुआ गोपाल का दोस्त तारीफ करने लगा। लेकिन दूसरा दोस्त कुछ संशय में पड़ गया था। लेकिन थिंग इज दिस, वह आदमी क्या उस तरह से हाथ फैला सकता है ? तू अपने आपको ही जांच ले तो जरा, क्या गरदन मरोड़ नहीं खा जाएगी ?

उस लड़के ने अपने दाहिने हाथ की मुट्ठी पर ठोढ़ी रखकर भावुक होकर यह बात कही थी। एक सज्जन को किसी मीटिंग में उसी ढंग से भावुक बनकर बातें करते उसने देखा था।

तारीफ करने वाले दोस्त ने उसका हाथ पकड़कर झकझोर दिया, गोपाल दिल में कहीं बुरा मान जाए तो आज का चना-चीनी तो खोना ही पड़ेगा, भविष्य में मिलने वाली सुविधाएं भी हवा हो जाएंगी। बोला—सौ बार कर सकता है। तस्वीर में ही तो, आखिर तस्वीर में—बहुत कुछ बातें हो सकती हैं। क्यों, तूने पंजिका[1] में नहीं देखा है ?

बात के अन्त में उसने गोपाल के चेहरे की ओर नजर डाली।

---

1. पंजिका—असमीया या बंगला पंचांग जिनमें विज्ञापनों की भरमार होती है।

गोपाल अब अनुभवी की भांति मुंह में ही मुस्कराता रहा। पंजिका में देखी हुई एक अद्भुत तस्वीर उसे याद आ गयी। अपने समर्थक दोस्त के साथ ही उसने वह तस्वीर देखी थी। गोपाल इन दोनों को भी दूकान के अन्दर ले गया। बिठाकर लवणचूस दिए और सबको चाय बनाकर दी। गांव के आए हुए लोग चाय-तम्बाकू बीड़ी पीकर अपने-अपने घर चले गए। दोनों दोस्तों ने एक बड़े कागज पर दूकान में जो-जो सामान मिलते हैं उनकी एक सूची लिख रखने की सलाह देकर विदा ली।

इसी तरह से गांव के सिरे पर फादर एंड सन्स पंसारी की दूकान का उद्घाटन हो गया। स्कूल के समय के अलावा हरदम यही दूकान गोपाल की चिन्ता का विषय बन गयी।

मील भर के अन्दर ही बलभद्र गोसाई की बड़ी दूकान थी। गोपाल की दूकान का महाजन भी वही था। बोरी भर नमक, मनभर चीनी, एक कनस्तर मिट्टी का तेल, एक कनस्तर सरसों का तेल, गुड़ का सीरा, गुड़, मसाले, लवणचूस, बीड़ी, दियासलाई आदि उसने एक गाड़ी सामान बैलगाड़ी पर लाद लिया। बलभद्र महाजन गद्दी पर गाव तकिया डाले बैठा हुआ रकम का हिसाब कर रहा था, गोपाल का बाप भी उसके पास बैठ गया था, गोपाल गुमास्ते के साथ घूम-घूम कर कौन-कौन से सामान चाहिए, बताता जा रहा था।

महाजन ने एक बार आवाज दी—क्या रे गोपाल, तूने दूकान खोली है? इस महाजन से गोपाल को डर-सा लगता है। उस इलाके में भला महाजन से न डरता हो, ऐसा है ही कौन? कितने सारे लोग उसकी दूकान के कर्जदार हैं। वह क्या कहे न कहे, सोचता-सा उसके पास आकर खड़ा हो गया।

—कभी किसी को उधार न देना, समझा न? तू बीच में यहां आते रहना। मैं दूकान की बहुत सारी बातें सिखा दूंगा। समझा न?

महाजन पैकारी खुदरा दूकानदारों को व्यापार का तरीका सिखाने के लिए हमेशा आगे बढ़ा रहता है। क्योंकि वहां से कुछ ही दूर मारवाड़ी व्यापारी का बड़ा गोला है। इसी कारण यह पैकारी दूकानदारों को, अपने हाथ में रखने के लिए ज्यादा प्रयासशील रहता है। पैकारी दूकानदारों को उससे कीमती सलाह जरूर मिलती हैं परन्तु उसकी समदृष्टि में पैकारी और खुदरा सामान की कीमत में ज्यादा अन्तर नहीं रहता। यही उन लोगों की सबसे बड़ी असुविधा है।

जो भी हो, गोपाल की छाती आज फूल उठी थी। अब तक तो वह एक साधारण-सा गाहक था, पावभर सरसों का तेल, आधा सेर नमक, इसी दूकान से ले जाया करता था। मगर आज वह भी एक दूकानदार है।

उनके यहां एक चालपीरा[1] था। उसी को ठेल-धकेल दूकान में घुसाकर गद्दी बना

1. चालपीरा—कुछ कम ऊंचाई की चारपाई।

लो हालांकि वैसा गोपाल के आग्रह से ही किया गया। पिछले दिनों मेले में खरीदी हुई तुंदिल गणेश की एक मूर्ति थी। लकड़ी की एक पेटी को दीवार में टांग, उसी में मूर्ति की स्थापना कर दी। अब एक गाव तकिया चाहिए और चाहिए एक संदूक, जैसी कि महाजन की गद्दी में है। समझते हो न बप्पा, हमें भी वैसी ही एक संदूक लानी होगी।

—हः।

—क्यों ?

—अरे, इस महाजन को अभी ही पैसे रखने की संदूक की जरूरत हो गयी। अरे हाथी की लाद। देख भला खरहा क्यों मरने जाये ?

तभी एक हाथ में चावल की एक पोटली और दूसरे हाथ में दो बोतलों को हिलाता हुआ गांव का ही एक बुड्ढा दूकान में आया। बोतलों के टकराने की आवाज दूर से ही सुनायी दे रही थी। परन्तु लोग तो उनकी दूकान के सामने से बलभद्र महाजन की दूकान में ही जाते हैं। बुड्ढे के आने पर गोपाल का दिल टिपची (एक छोटी चिड़िया) चिड़िया की भांति नाचने लगा। आज तो वह खुद माल तौलकर देगा। पहले तो सबेरे की ओर गाहक आते ही नहीं, फिर दूसरे समय वह दूकान में रहता ही नहीं।

—आओ, आओ भैया !

—आइये, आइये बड़े चाचाजी !

बाप-बेटे दोनों अलग-अलग संबोधनों से उसे पुकार उठे क्योंकि बुड्ढा पहले उनकी दूकान में न आया था।

—खाने का तेल क्या भाव दे रहे हो ? दरवाजे के पास से ही बुड्ढे ने पूछा।

—आठ आने पाव···। बाप ने जवाब दिया।

—साढ़े सात आने पाव···। लगभग साथ ही बेटे ने भी जवाब दिया। बाप-बेटे दोनों ने एक-दूसरे की आंखों में देखा।

बुड्ढा गंभीर हो गया। चावल क्या भाव ले रहे हो ?

—आठ आने सेर। बाप ने जवाब दिया।

—साढ़े सात आने सेर। गोपाल ने सरसों के तेल का नुकसान पूरा कर कहा।

—हः। बाप ने बेटे की आंखों में नजर डाली।

—बात तो एक ही हुई। बेटे ने झट जवाब दिया।

लेकिन बुड्ढा चलने को तैयार हुआ—लेने का भाव कम, देने का ज्यादा।

—क्यों ? भला वहां क्या भाव है ? बाप ने पूछा।

—खाने का तेल सात आने, चावल साढ़े आठ आने।

—कहां, हमसे तो वह पैकारी दर ही उस भाव से लिया करता है। हमें बताया है कि खुदरा में इसी भाव से बेच रहा है। गोपाल के बाप ने जवाब दिया।

गोपाल ने बीच का रास्ता निकालते हुए कहा—ठीक है, सुबह का गाहक है। दो-दो पैसे दोनों ओर से छोड़ा-छोड़ी हो जाए। बाप के कपाल पर सिकुड़ी हुई गांठ

की तरफ उसने नजर नहीं डाली ।

—हूं, आज गायों को चराने ले जाने की बारी है रे । जल्द गायें लेकर जाना है । दे दे आज मूल कुछ नुकसान कर ही ले जाऊं । बूढ़े ने गद्दी पर बैठे, चावल की पोटली आगे बढ़ा दी । गोपाल ने जल्दी एक बीड़ी निकाल कर थमा दी । गाहक को देनी चाहिए ।

तम्बाकू भी पीओ । बाप चिलम लेकर भरने को चला गया । घर भी दूकान के पीछे ही था ।

—हां, हां, तम्बाकू भी लाओ, बीड़ी का कश खींचना मुश्किल पड़ता है । बाप के न रहने के मौके पर बीड़ी फिर से बुड्ढे को दे दी गोपाल ने ।

—रख लीजिए गाय चराते समय पीयें । बुड्ढे ने बीड़ी कान में खोंस ली ।

सरसों के तेल की बोतल की ओर देखते हुए बुड्ढे ने कहा—अरे, देखता हूं बोतल के गले की निशानी तक दो अंगुल रह गया है ; वहां से तो हमेशा उतना ही लाता रहा हूं । अरे, दे दे, उतना-सा लगा दे । इतना अन्याय करना ठीक नहीं ।

बाप के आने के पहले ही उसने काफी तेल लगा दिया । जल्दी में नमक आधा सेर, चीनी पाव भर तोल दी । तराजू की डोरी कुछ समय उठाये रखकर खप्प् से डंडी-पकड़ चीनी कागज पर डाल दी । कुछ नमक जमीन पर गिर पड़ा । फिर से बोरे से नमक दे कर पूरा कर दिया ।

बाप चिलम लेकर आ गया ।

—एक ही गाहक को ही माल देने में भला इतनी खटर-पटर किस बात की ? नमक गिराया कैसे ?

उसने चिलम बुड्ढे को बढ़ा दी ।

चिलम ले बुड्ढे ने पोपले मुंह को खोल कर हंस दिया ।

—हूं, मैं भी वही देख रहा हूं । उहूं लड़के का हाथ अभी जमा नहीं ।

बड़ी दूकान के गुमास्ते की भांति जल्दीबाजी करने जाकर आखिर यही सर्टीफिकेट मिला । उसे बड़ी शर्म आ गयी । शर्म से नाक के सिरे पर सुरसुरी दौड़ गयी ।

जाते समय बुड्ढे की आंखों में पड़ गयी गणेश की वह मूर्ति—अरे, मगर यह न करना । अनियाय और अधरम ये दो ही कलि के पाप हैं । माल कम देना अनियाय है, गणेश पूजा करना अधरम ।

—ई, वहां भी तो है । दूसरी जगह भी तो है । गोपाल ने छूटते ही जवाब दिया ।

बुड्ढे को गुस्सा आ गया । रे, मैं क्या तुझसे कह रहा हूं ?अंग्रेजी पढ़-पढ़कर ही यह देश बरबाद हो गया । एकादश[1] में क्या यों ही लिखा, कि घर-घर में दूकान होगी । यहां पहले तो सिर्फ वह बड़ा गोला भर था । अब तो घर-घर दूकानें हुईं । दूकान-दूकान में गणेश, अधर्म, बेभिचार, ठगी और कितना क्या-क्या हो रहा है ।

---

1. एकादश स्कन्ध–भागवत–शंकरदेव द्वारा अनूदित ।

बकता हुआ बुड्ढा सामान लिये चला गया।

अब बाप-बेटे के हिसाब-निकास की बारी थी। पावभर तेल बोतल के गले तक भरने में नुकसान, नमक की डंडी इतनी झुकी थी कि कम से कम पावभर ज्यादा गयी। ऐसा होने पर तो दूकान में लाल बत्ती जलेगी।

—होने दो, तभी तो गाहक आयेंगे। नयी दूकान में पहले लोस होती नुकसान नहीं।

—अरे लोस भर-भर कर गाहक बुलाते तो एक दिन गाहक आकर एक लाल बत्ती ही देखेंगे।

पर गाहक आते ही नहीं। महाजन की दूकान में सालाना शर्त पर ज्यादातर लोग सामान लिया करते हैं। साल भर बाद पटसन, सरसों, धान दिया करते हैं। नकद पैसे देकर सामान लेने वाले बड़ी हुज्जत किया करते हैं। कभी घर से आधा सेर नमक लौटा लाते हैं—तोलने पर छटांक भर कम मिली है। यों कम देने पर सामान कौन लेगा? उनकी दूकान पर आते ही लोगों की परेशानी असन्तुष्टि ज्यादा हो जाती है। मसूर की दाल सीझती नहीं, चीनी गंदी है, सरसों का तेल गंधाता है। दो आने का सामान लेने आते हैं, तो भी पीने के लिए एक बीड़ी चाहिए। बाप के न रहने पर गोपाल जितना हो सके गाहकों का मन रखता। मगर ये ही गाहक जब महाजन की दूकान में जाते तो मापतोल की हेरफेर या कम-ज्यादा की बात पर चूं तक नहीं करते। वही दाल, चीनी, तेल महाजन की दूकान से ही लाये गये हैं, लेकिन वहां सब कुछ अच्छा, यहां सब कुछ बुरा हो जाता है।

लगभग तीन महीने बाद बाप-बेटे दोनों हिसाब लगाने बैठे। बीस रुपये उधार में घुस गये हैं। महाजन की दूकान का बीस रुपया उधार हो गया। दूकान में सामान भी नहीं के बराबर है। हाथ के नकद रुपयों में हिसाब लगाने पर मूल का लगभग बीस रुपये घाटा था।

यह तो बड़ा मूल खोने का व्यापार हो गया। विरक्ति से बाप के कपाल की नसें तन आयीं।

लाचार होकर सामान घटा-घटा कर लाना पड़ा। नमक एक बोरे की जगह एक मन, सरसों का तेल एक कनस्तर की जगह दस सेर, चीनी दस सेर की जगह पांच सेर।

उसके बाद नमक आधा मन, सरसों का तेल ढाई सेर, चीनी ढाई सेर, पर मिट्टी का तेल एक कनस्तर तो लाना ही पड़ेगा। मगर पैसा ही तो जुटता नहीं। महाजन उधार नहीं देता, पहले ही बता दिया है। पहले का बीस रुपया उधार न चुका पाने के कारण यहां तक कि महाजन के पास जाने में गोपाल को भी शर्म आने लगी। लेकिन उनकी दूकान में जिनका उधार रह गया है, वे तो बोतल नचाते हुए, दूकान के सामने से होकर ही दूसरी दूकान में चले जाते हैं। उधार तो चुकाते ही नहीं हैं—सामान भी नहीं लेते। कुछ कहने पर जबान पकड़ लेते हैं। कै सौ रुपये के कर्जदार हैं जी? नहीं देंगे पैसे। जाओ केस कर लो। दो-एक के साथ तो बाप का झगड़ा ही हो गया। लाचार गोपाल रोकड़ से ही

पैसे चुराकर फिर रोकड़ में ही उनके नाम जमा दिखा रख देता। दूकान बन्द कर देने पर भी उधार वसूल नहीं होगा। उधर सामान लाने के लिए रकम नहीं जुटती। पांच सेर, ढाई सेर सामान पैकारी भाव से लाने जाने में उसे शर्म आती, बाप को ही भेज देता। एक दिन ढाई सेर चीनी लाने जाकर ही वह किस मुसीबत में फंस गया था कि क्या कहने।

महाजन की गद्दी में उस दिन कई लोग थे जिनमें दो-चार पीली पगड़ी लगाये मारवाड़ी तथा चार-पांच दूसरे सज्जनों के साथ उसके एक शिक्षक भी थे। गुमास्ते से सामान लेकर किसी तरह निकल जा सके तो बच जाए। पर होशियार महाजन की तेज नजर उस पर पड़े बगैर न रही।

—अरे देखूं-देखूं जरा। वह सन्स एंड कम्पनी है न ? एक नये ढंग का शब्द सुनकर, उसके अलावा महाजन की उत्सुकता दिखाने के कारण भी सबकी नजरें उसी पर पड़ गयीं।

पैर से लेकर सिर तक समूचा शरीर सिकुड़ कर भिन्न के एक बटा चार की भांति वह खड़ा रह गया।

—बेपार कैसा चल रहा है रे ?

एक दिन गोपाल ने बेपार कहा था।

—काफी अच्छा ही कहना होगा – मानो कोई सज्जन ही कह रहा हो इस प्रकार जहां तक हो सके गंभीरता से उसने यह बात कही। उसके जैसे एक लड़के की जबान से इतनी गंभीर-सी बात सुनकर सबकी उत्सुकता दूनी हो गयी।

—काफी अच्छा है न ? आखिर बिक्री-बट्टा कैसा चल रहा है ?

—हाट के दिन छह-सात रुपये तक हो जाता है।

अब तो कोई भी गंभीर नहीं रह सका। जोर की हंसी की आवाज उठी।

—हंसी के बीच ही महाजन ने पूछा—अभी क्या-क्या ली है ?

—चीनी।

—कितनी ?

इस बार जवाब देने में उसे काफी शरमिन्दा होना पड़ा। ज्यादा बताने पर पैसे मांगेगा। बहाना भी पकड़ा जायेगा।

—ढाई सेर।

फिर हंसी की लहरें। बलभद्र महाजन ने तकिये को अपने पेट पर लेकर कहा—अरे, छोटी बहन के साथ मिल बैठकर फांक लेना, समझा ? अरे तू तो आजकल इधर का मुंह ही नहीं करता ? भला सामान कहां से लिया करता है ?

अब तो उधार की बात निकल पड़ेगी। सामान लेने का तो पैसा ही है नहीं, कहां से ? परन्तु महाजन के वज्र वचन निकल ही आये ? जब उधार हो गया तो फिर राह ही छोड़ दी है न ? उधार चुका देने को कह देना, समझा ?

आ भगवान ! पर वही तो उनकी अपनी दूकान में जो लोग उधार ले गये थे, वे ही अब इस दूकान में आकर सामान ले रहे हैं। वहां, उसकी भांति तो उन सबको शर्म नहीं आती। उसके पैरों का सारा खून चढ़कर मानो सिर में चोटें करने लगा।

किसी तरह से वह दूकान से बाहर निकला। लगा, पीछे की ओर से सब उसी पर नजर डाले हुए हैं, हंस रहे हैं। लाज-अपमान सभी उसके शरीर पर पतंगे रेंगने की भांति रेंग-से रहे थे, खास कर उसकी पीठ की ओर।

उसके बाद फिर वह वहां गया ही नहीं। बिना गाहक के उस दूकान में बैठे-बैठे वह दूकान का भविष्य कल्पना करने में जुट गया। फूस की वह छत मानो अचानक बढ़कर एक पक्के मकान में बदल गयी।

आने वाले आ रहे हैं, जाने वाले जा रहे हैं, गाहक और पैकारी दूकानदारों में कोई अन्तर नहीं। वह जितना हो सके गंभीर हो गद्दी पर बैठा गाव-तकिये को गोद में लिये रकम ले रहा है। कोई दो-चार बातें पूछते हैं तो वह सिर्फ एक बार जवाब देता है।

बात सुनने की हिम्मत भी किसमें कर सकते हैं ?

बाहर की विशाल तराजू पर गुमाश्ता पटसन, सरसों तोल कर चीख-चीख कर बताता जा रहा है। एक मन सात सेर, एक मन पन्द्रह सेर। वह पास ही मुहर्रिर को बिठला कर कागज पर लिखवाता जा रहा है। दूर से ही टीन पर लिखा रंग-बिरंगा साइनबोर्ड चमक रहा है—फादर एंड सन्स जनरल मर्चेंट। वे बड़े सौदागर बन चुके हैं। महाजन की दूकान छोटी होती हुई एक छप्पर में बदल गयी है। महाजन खुद आकर पैकारी सामान ले रहा है, पांच सेर चीनी, दस सेर नमक।

— दो पैसे के लवणचूस दो। कितने दोगे ? पांच देने होंगे।

क वर्ग में पढ़ने वाले नन्हें-नन्हें बच्चों का झुंड। स्कूल की छुट्टी हो गयी है। उसने हरेक को एक-एक लवणचूस बांट दिया। भला तुम्हीं सब आशीर्वाद दो।

मगर इस बार मिट्टी का तेल पूरा कनस्तर नहीं आ पाता। चीनी ढाई सेर आने पर भी, सरसों का तेल नहीं आता। बाप कहीं से उधार की रकम वसूल कर सकता है या नहीं, या कहीं से उधार सामान मिल सकता है या नहीं, इसी खोज में चक्कर लगाने लगा। स्कूल बंद है, गोपाल दूकान की गद्दी पर बैठा जमीन-आसमान के कुलाबे मिला रहा है। फूस की छप्पर भी आसमान के झांकने लायक हो गयी थी।

अचानक उसके दो दोस्त आ निकले।

क्या है रे, गोपाल ! फादर एंड सन्स एंड कम्पनी तो देखते हैं कि दिवालिया मार्का हो गयी। काठ-पेंसिल हैं या नहीं ?

—नहीं है भई, व्यापार मंदा है।

उन्हें बिठाकर दो बीड़ियां आगे बढ़ा दीं। वे नये-नये बीड़ी पीने लगे हैं। गोपाल खुद तो पीता नहीं, मगर उन्हें उधार में दिया करता है।

—अगर बप्पा आ निकले ? बीड़ी हाथ में ले फिसफिसाते हुए पूछा।

—न-न—बप्पा के दिमाग में मिट्टी का तेल और सरसों का तेल एक साथ जल रहे हैं। रकम सोर्ट है। सभी ने उधार खा ली। दियासलाई की एक तीली जलाकर उनके मुंह की बीड़ियों में लगा दी गोपाल ने।

गांव का वही बुड्ढा बलभद्र महाजन की दूकान से सामान लेकर लौट रहा था। हाथ में मिट्टी के तेल और सरसों के तेल की बोतलें। लड़कों ने बीड़ियां झट बुझा दीं।

—अरे एक दियासलाई तो देना। लाने को भूल गया।

—नकद या उधार?

—कल दूंगा पैसे।

—पहले कम भी बकाया है। फिर सामान भी तो नहीं लेते।

—कितने सौ रुपये के कर्जदार हैं रे, जो इतनी इज्जत-उतार की बात कर रहा है?

—एक रुपया हो या एक सौ पैसा हो, व्यापार इज व्यापार। क्यों भोग? उसने समर्थन हेतु दोस्त के चेहरे की ओर देखा।

दियासलाई देते वह विस्मित हो गया। सरसों के तेल की बोतल पर नजर पड़ी।

—कहां, देखता हूं बोतल की निशानी से तो तेल दो अंगुल रह गया है!

बुड्ढे की आवाज गड्ड-मड्ड हो गयी। एक दिन कुछ कम दे दिया है, कभी किसी ओर से ज्यादा दे देगा। देखूं,-देखूं एक बीड़ी दे।

बेशर्मी से बुड्ढा एक बीड़ी जलाकर वहां से चला गया।

—भोग, यदु, समझ रहे हो न; इस बार वह भी एक बीड़ी जला उनके बीच आ बैठा। देश में अनेक 'सिन' और 'क्राइम' भर गये हैं. ओ, बूढ़े लोग भी जबकि धोखा देने लगे हैं तब तो सचमुच घोर कलिकाल आ पहुंचा।

यदु बीड़ी के धुएं का छल्ला बनाकर कायदे से छोड़ रहा था।

—मुझे भी तो तेरे दो रुपये देने हैं न? बीड़ी की कीमत, एक रबर, एक काठ-पेंसिल की कीमत भी तो बाकी है न? इस महीने की फीस से ही चुका देना होगा। भोग बीड़ी को दांतों से पकड़े रह कर कहता गया।

—तो फिर अगले सप्ताह ही देना। दीपावली के दिन काम में लगेगा।

—क्या दीपावली मनायेगा। दोनों चीख उठे।

—हूं केले के पौधे गाड़ूंगा। दूकान का चना, चीनी सब कुछ बांट दूंगा। गेट के मुहाने पर गत्ते के ही डब्बों में सरसों के तेल के दो बड़े दीये जलाऊंगा। डब्बों के चारों ओर लाल कागज लगा रहेगा।

वे हंसना चाहते थे मगर रुक गये। दीवार पर अब भी टंगे फादर एंड सन्स कम्पनी का वही-साइनबोर्ड और उसके पास ही उस विख्यात आदमी की तस्वीर। जिसकी स्याही

और रंग उड़-से गये थे। कागज जहां-तहां फट गया था, फिर भी उसका विशाल टोपी वाला सिर और लकवा मारे पैर समझ में आ जाते थे। अपना समूचा चेहरा पीठ की तरफ मोड़ कर वह दाहिना हाथ वैसे ही फैलाये हुए था।

—एक मुट्ठा बीड़ी दीजिये तो।

(1956)

5 एक किरण : स्मृति-चांदनी की

—तो फिर रविवार को देखिये फिर कहीं भूल न जाएं।

—जरूर, न भूलूंगा। तीन मील दूर है, कहा है न ? चांदनी रात है, देर से भी लौट सकता हूं।

मेरे आश्वासन पर वह सन्तुष्ट हो गया था। समूचे चेहरे पर सन्तुष्टि का हास खिल उठा था। साग सब्जियों के बीजों की जो पोटलियां मैंने बना दी थीं उन्हें एक बड़ी पोटली में सहेज कर वह साइकिल पर सवार हो गया।

मैं दरवाजे पर खड़ा साइकिल की पावदान पर पैर रखकर उसके लपक-लपक कर चढ़ने का ढंग, उसके शरीर पर का काले रंग का सस्ता कोट, और सख्त पुट्ठों भरे शरीर का गठन देखता रहा।

यही लीली का पति है।

मैट्रिक पास करने के बाद कृषि विभाग में एक डेमानस्ट्रेटर की नौकरी मिल गयी थी। गांव में बीज किरानी बाबू के रूप में परिचित था। आलू, दाल, बोरोधान, ईख, तिल गोभी आदि के बीज और पौधे के लिए मौसम में दो एक किसान आते, लेकिन ज्यादातर आने वाले लोग गैर किसान ही होते। बीज के लिए बताने पर सामान सस्ता मिल जाता है, यही फायदा है। मुझे यहां आये हुए ज्यादा दिन नहीं हुआ। आज अचानक यह युवक जिसने अपना नाम हलधर बरा बताया था, तीन मील दूर के एक सुदूर देहात से आत्मीयता का परिचय लिये यहां हाजिर हो गया था।

—हालांकि मैं किसान हूं, फिर भी बीज-पौधे लेने नहीं आया, समझे न। आपसे परिचय करने ही आया हूं। हमारी श्रीमती ने उस दिन अपने भतीजे से आपका नाम सुनकर बताया कि आप उसके मामा होते हैं और उसी ने मुझे भेजा है।

दो-चार दिन स्कूली लड़कों के साथ वाली-बाल खेला था। उस लड़के (भतीजे) से उसी अवसर पर परिचय हो गया था।

—लीली ? ओ, आप ही हैं ?

उसने हंसते हुए सिर हिला दिया। हालांकि वह हंसी शब्दहीन थी।

—क्यों ? भला लीली को मैं पहचान क्यों नहीं पाऊंगा ? मामा ही लगता हूं न ? हालांकि गांव-घर के नाते से। पिछला वाक्य जबान में ही रह गया। इसी बीच खिल-खिलाकर हंसता हुआ उसने मेरी बात का समर्थन कर दिया था। इसलिए आखिरी वाक्य यों भी दब गया।

उस आदमी ने हाई स्कूल में कुछ ही कक्षा तक पढ़ा था फिर लड़ाई में शामिल हो

गया था। लड़ाई खत्म होने पर शादी-ब्याह कर खेती के काम में जुट गया।

लीली। देहात की किसी लड़की का भला इससे और सुन्दर कौन-सा नाम हो सकता है। गांव के मिडिल स्कूल में सचमुच बड़ी खूबसूरत लड़की बनकर आयी थी लीली। लीली···लीली। ब्रह्मपुत्र की जगमगाती अंजुरी भर रेत मानों किसी ने फुरफुर-फुरफुर मेरी पीठ पर उड़ेल दी हो तो लीली सचमुच अब तक भूली नहीं है? अचरज! लड़कियां इतना याद रख सकती हैं। लेकिन—कहाँ—मैं भी तो भूला नहीं हूं। रेत के अन्दर कछुवे के अंडे जैसे छिपे रहते, मेरे अन्तर में भी उन दिनों की यादें छिपी ही हुई हैं।

दिन भर के काम-काज कर चुकने के बाद भी ताश, शतरज के अड्डे पर आज नहीं गया, इससे रसोइया लड़के को अचरज हुआ है। मैं समझ गया था, आज तो गोष्ठी जमेगी नहीं। बहुत दिन बाद आज का यह एक दिन बहुत से क्षणों के बीच एक क्षण आज का यह मिला है। आज मेरे मन में बहुत से लोगों के साथ चाय की बात उभर आयी है। विद्या, देवेन, नरेन, मणि, भावि आदि के साथ खेतों से होकर स्कूल दौड़ने के दिन की और उस रासपूर्णिमा में 'भाओना' अभिनय की रात की याद भी हरी हो आयी है।

धत्—उस याद से आज हंसी आ जाती है। उन दिनों तो मेरी उम्र सोलह या अठारह साल की ही थी। नौवें वर्ग में पढ़ता था और मेरे पौ फटते यौवन की वही तो रास-पूर्णिमा थी। वह मेरी वही उम्र थी, जिस उम्र में लड़के अपने बाल उलझे-पुलझे रखना सीखते हैं—गलती से कमीज के नीचे का बटन ऊपर लगा लेते हैं, खेत की सख्त मिट्टी पैरों में ठोकर लगने पर भी भुरभुरे चूने की ढेरी पर लात मारने जैसा अनुभव होता है। उसी उम्र में रास पूर्णिमा की रात 'भाओना' अभिनय घर में लीली से मुलाकात हुई थी।

अभिनय घर में विद्या और उसके साथी मिले। क्यों रे—बालों में तेल नहीं डाला, कंघी नहीं की। सभी कवि बनकर आये हो, कवि का मतलब क्या होता है विद्या को पता है। छठे वर्ग में पढ़ते समय एक असमीया कविता किस कवि की रचना है, लड़कों से एक ओर से पूछ-पूछ कर मास्टर पीटता आ रहा था और दो लड़कों के बाद मेरी बारी भी आने ही वाली थी।

तब चेहरे को फुलस्केप कागज बना लेने के सिवा और कोई चारा न था। मेरे पीछे ही था विद्या। अचानक देखा, कि उसका चेहरा लाल-काली स्याही लगे सोख्ते जैसा हो गया। समझ गया, उत्तर देकर अच्छा लड़का बनने के गौरव की प्रतीक्षा में वह अधीर है। ठीक है बच्चू, कानजुगेसन की बारी आने पर कहां बचेगा? उस समय मैं भी बताने वाला नहीं। लेकिन तभी उसने फुसफुसाते हुए कहा—क्यों, क-वर्ग में पढ़ा न था वह किसकी तस्वीर है—कालिदास महाकवि की, मैं बिलकुल बछिया का ताऊ नहीं। अतः समझ गया, कवि कालिदास की रचना है। इसी बीच मास्टर ने हमारे षडयंत्र की भनक पा कर तुरंत मुझसे सवाल किया। मैंने भी फट् से जवाब दे दिया।

उसी दिन से ही विद्या पर मेरी श्रद्धा हो आयी। वह और कुछ जानता हो या न

हो, कालिदास को जानता है। उस दिन मुझे बेंत लगाना छोड़ मास्टर हंसता हुआ बैठ गया था। उसी दिन से मेरा नाम पड़ गया कवि कालिदास। चाहे जो भी हो, जबकि विद्या ने कहा है तो जरूर कवि-सा ही बन आया हूं। तुरंत उस जमाने में 'आवाहन' में पढ़ी एक कहानी की याद आ गयी—यों ही शायद लोग प्रेम में फंसते हैं, कवि बनते हैं।

कहते हैं कि प्रेम में आंखों आंखों का मिलन होना चाहिए। भाओना घर में जबकि और दो आंखों को खोजती आंखें हैरान हो चली थीं, तभी मेरे सीधे औरतों के समाज में खंभे से चार औरतों की ओर से, वही तो दो आंखें हैं। इसके बाद तो आंखों में आंख पड़ना, लाल-पीला हो जाना, (कहानी में जैसा कि पढ़ चुका था, वैसे ही वह लाल हो गयी थी, ऐसा मैंने अनुमान कर लिया था) आदि अभिनय चलने लगा। हालांकि विद्या आदि उल्लू के पट्ठे इन बातों का कोई भेद न पा सके।

उसी दिन से उस प्रेम का क्या कहना? समझ गया कि इसी को प्रेम में फंसना कहते हैं। मैंने भी मान लिया, लीली मेरे प्रेम में पड़ ही चुकी है। अकेले में किसी आदमी को यों खिल-खिलाकर हंस उठते देख रसोइया लड़का तो अचरज में पड़ ही जाता, यहां तक कि दीवार से टिकी हुई पुरानी ज्जर्र-सी हरक्यूलिस साइकिल भी अवाक् रह गयी थी। शाम को मैं घर से कहीं निकला नहीं, देखकर रसोइया लड़का मेरे लिए एक कप चाय ले आया था। मैंने कुछ अप्रतिभ-सा होकर दो-एक बार खांसते हुए उलटकर उसे ही डांट दी—जैसे चाय का रंग ही नहीं आया, इसलिए वह ज्यादा कंजूस हो गया है और इस शाम के समय पूरी कप की बजाय आधी कप यानी एक सिंगल चाय से ही काम हो जाता। इसलिए वह मुझे दिवालिया करना चाहता है आदि। चाय का कप लेकर उसे अपने काम पर भेज दिया। हालांकि मैं जो अकेले में हंस पड़ा था उसमें मेरा कोई दोष न था। अधकचरे प्रेमी की हालत के बारे में सोचने पर छोटे मुहर्रिर की तो बात ही क्या पक्के बड़े मुहर्रिर को भी हंसी आये बगैर नहीं रहेगी।

पूछताछ करने पर पता चला कि वह लड़की हमारे गांव में नयी-नयी आयी है। पास के मिडिल स्कूल के छठे वर्ग में अपना नाम लिखवाया है। मिडिल स्कूल के बड़े भाषा-शिक्षक हमारे गांव के लोकनाथ मास्टर के यहां ही रह रही है, उसके मौसे लगते हैं। जबानी प्रश्न पूछकर लड़कों को परेशान कर डालने वाले लोकनाथ मास्टर के लड़के पांच सौ गज की दूरी से ही पहचान लेते हैं और सुविधा के मुताबिक दूसरी राह मुड़ जाते हैं। पहले जिन्हें देखते ही मेरे होश उड़ जाते थे, ऐसे लोकनाथ मास्टर के यहां अब मैं हर शाम को हाजिर होने लगा। अपने हाईस्कूल के पुस्तकालय का मैं नियमित पाठक बन गया। पुस्तकालय के दायित्व वाले चक्रवर्ती मास्टर मेरी आशातीत प्रगति से बहुत ही विस्मित हो पढ़ने लायक किताबें चुन-चुन कर देने लगे। एक दिन जबकि बेजबरूआ[1] का नावल' लौटा रहा था। मास्टर ने बड़े आग्रह से पूछा कि पढ़कर कैसा लगा? ऐसा

1. लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ—असमीया के प्रख्यात साहित्यकार।

उपन्यास तो हमारे असमीया साहित्य में है ही नहीं। मैंने पुलकित होकर उत्तर दिया। चक्रवर्ती सर ने भी दुगुना पुलकित हो जब दोनों कानों को पार्चमेंट कागज बनाकर छोड़ दिया, तब कान में सिर्फ एक ही बात गूंज रही थी—सातकांड रामायण पढ़कर—पूछता है कि सीता किसका बाप। चक्रवर्ती मास्टर जिनके नाम पर संस्कृत, अलजेबरा और अंग्रेजी एक घाट पर पानी पीते हैं उनके हाथ भगवान ने आज अच्छा रंग दिखाया। लौटते समय राह में विद्या और देवेन ने धीरज बंधाया तुमने भला बता क्यों नहीं दिया, कि बहियां भरकर अलजेबरा करने को देते हैं, इसीलिए घर में नावल पढ़ने का समय ही नहीं मिल पाता या और किसी तरह का बहाना भी क्या नहीं कर सका ?

—पता चलता तो बहाना न करता, ऐसा मुझे कौन-सा धर्मराज पा गये हो ? अरे मैं तो अचानक ही पकड़ा गया न।

इस जरा-सी बात पर ही अकेले में शायद मुझे हंसी आ गयी थी। असली बात थी कि मैं सचमुच कवि ही बन गया था। अलजेबरा की बाहरी बही में—ए प्लस-बी होल स्कवायर के बाद इज इक्वल टु एक-एक बड़ी-सी प्रेम की कविता उभर आयी। कोई कहीं सन्देह न करे, इसके लिए अंग्रेजी के अक्षरों में एक सिरे से लिख गया—तुम से या प्रिया से, जैसी कविता—जिसका सारांश आज भी याद है। कलम या कापिली में बाढ़ें आवें, दुनिया डूब जाये, उसके बीच में एक नाव पर जो आदमी सवार हैं, वे हैं तुम और मैं। सचमुच मेरी प्रार्थना भी यही थी। क्योंकि तब मेरी उम्र सोलह या अठारह साल की थी, और उभरती जवानी की वही रासपूर्णिमा थी। उसके बाद एक दिन बड़ी तल्लीनता से पत्र में अलजेबरे का हिसाब करते समय भैया जो कॉलेज की छुट्टी में घर आये हुए थे, पीछे की ओर से कुर्सी पकड़ खड़े हो, अपने छोटे भाई का यह अपूर्व कृतित्व एकटक देखते रहे थे।

उस दिन से प्रेम के नाम पर तिलांजलि देने के बाद मैट्रिक पास कर चाय-बागान में अप्रेंटिस के लिए दर-दर भटक कर अन्त में यह बीज-पौधे का किरानी बना। कई साल यों ही गुजर गये। कौन कहां गया, उसका लेखा कौन रखे। विद्या तो चाय बागान में जमकर पूरा संसारी हो गया था। हरि आदि पढ़ाई में बी० ए०, एम० ए० तक आगे बढ़ गये। बीते दिनों का रोमांस अब नहीं रह गया था। विकट वास्तव की टूटी हरक्यूलिस साइकिल पर डग-मग डग-मग सा जीवन आगे बढ़ रहा था। अब तो प्रेम में फंसने या उसका लक्षण दिखाई देते ही जो लोग होशियार नहीं हो जाते, ऐसे लोगों पर सहानुभूति ही हो आती है। हंसी आने लगती है। वह किस जमाने की कच्ची उम्र की दो दिनों की प्रेम-कथा है, दूसरे को शायद उसकी भनक भी नहीं मिली है, जिसके सामने कभी जबान से अच्छी तरह कोई बात कहने की हिम्मत नहीं हुई, फिर भी आज उसी लीली के नाम पर मेरे मन में इतने सारे मौसमी फूल खिलकर जगमगा उठे हैं। आज तो लीली शायद तीन-चार बच्चों की मां होगी। गांव की बहू होगी, जरूर कम उम्र में ही बूढ़ी हो चली होगी।

रात को खा-पीकर, रविवार तक बीच के अनावश्यक दिनों के बारे में सोचता हुआ सो गया। वे ही दिन सपने में जग उठे। विद्या, भाबि आदि के साथ उड़ते-लहराते वे स्कूली दिन। वे दौड़ते-कूदते फिर रहे हैं, पर आज कोई भी सामने नहीं दिखाई दे रहा है। कान में उनकी हंसी की आवाजें गूंज रही हैं। परन्तु उनकी विदेही प्रतिमाएं मेरे चित्त को सुख देने में जरा भी रुकावट नहीं डाल सकी हैं। पानी, चारों ओर पानी का लहराता सागर, बीच बीच में सरकंडों की झाड़ियां। पर उन्हीं के ऊपर ही न जाने दौड़ते-फिरते कैसे रहा। सरकंडों की झाड़ियों की ओट में—मैं न जाने कौन-सी चीज खोज रहा था। अचानक झाड़ी के बीच से एक मुस्कान भरा चेहरा उभर आया। लीली एक नन्हीं-सी नाव के सिरे पर बैठी, हाथ में पतवार थामें लीली मानों मेरी ही बाट जोह रही है। दूर-दूर चारों ओर से मुझे मानों कुछ कौतूहल भरी दृष्टियों ने घेरे रखा है, विदेही दृष्टियां—

ऐसे सपने तो बीसों आये थे। क्योंकि उन दिनों मेरी उम्र सपने देखने की थी, लेकिन अब तो उम्र ढल चुकी है, मेरे बाल-बच्चे-पत्नी है, लीली भी अब अध-बूढ़ी हो चुकी होगी।

रविवार की शाम। पास के एक मास्टर को साथ ले लिया साइकिल ले दोनों गांव की पगडंडी से आगे बढ़े। आश्विन-कार्तिक के दिन रास्ते-पगडंडियां अब भी धूल भरे नहीं थे। अचानक मास्टर एक बार कह उठा—शट्कीया, आज रात रास देखने चलेंगे। पूर्णिमा की चांदनी है, साइकिल से ही चलें। कुछ ही दूर एक जगह बड़ी अच्छी रास होती है।···

मास्टर शायद और भी कुछ कहता। लेकिन तभी मेरी साइकिल जाकर उसकी साइकिल से टकराने ही वाली थी कि वह अपनी साइकिल को झट पगडंडी से उस पटरी की ओर नीचे उतार ले गया। मैं ब्रेक लगा कूदकर उतर पड़ा। उसके संकट में सहानुभूति प्रकट करने का भला अवसर ही कहां था? सामने मानो शेर ही दीख गया हो, इस ढंग से चौंक कर मैंने पूछा—क्या आज रासपूर्णिमा है?

घटना के ऐसे आकस्मिक संयोग का मेरे जीवन में भला कौन-सा तात्पर्य रह सकता है? एक अनजान वेदना ने मेरे मन को आक्रान्त कर डाला। रास्ता और ज्यादा दूर का नहीं था। हम दोनों पैदल ही आगे बढ़े।

बाहरी दरवाजे के सामने कदम रखते ही पिछवाड़े की ओर भरे पूरे पान-सुपारी की बाड़ी की गोद में साफ-सुथरे सिल-सिलेवार घर आंगन ने मन में एक गहरी छाप डाल दी। बाहरी दरवाजे के सामने ही हरसिंगार का एक पेड़ था। अच्छी तरह झाड़ा-बुहारा, लीपा-पोता हुआ चबूतरा धूप मे चमकीले गेरुवे रंग का बन गया था। चौड़े से आंगन जिसमें कहीं 'केजा' घास तक की निशानी भी न थी उसकी चिकनी छाती बगुले के पंख की भांति दमक रही थी। बायीं ओर खलिहान, उसके सामने गुहाल। सब मानो सजधज कर भाओना, (शंकरी नाटक अभिनय) देखने हेतु बैठे हों। यहां तक कि चबूतरे के पास रखा-दा-कटारी की धार तेज करने में जहां-तहां घिसा हुआ चट्टान

का टुकड़ा भी मानो किसी के लक्ष्मी-हाथ का स्पर्श पाकर अद्भुत रूप से सजीव हो उठा था। मैंने खुद देखा चट्टान का टुकड़ा मानो हमारी ओर तिरछी निगाह से देखता मुस्कुरा रहा है। हमने दोनों साइकिलों को आंगन के सामने वाले सुपारी के पेड़ से टिका कर—कोई है ? कहकर आवाज दी। लेकिन एक बुढ़िया की करकराती बोली ने हमारी आवाज को दबा दिया।

—अरी ओ, खुद जो बच्चा पिलाने बैठ गयी, आधी झाड़ी हुई जगह को किसके लिए छोड़ दिया ? कौन नौकरानी आकर झाड़ेगी ?

बीच में कुछ समय पूर्णविराम पड़ा देख हम दोनों ने साथ ही मुंह खोला। लेकिन पूर्णविराम तो था नहीं, था अर्ध-विराम। इस बार आवाज दुगुनी ऊंची होकर शुरू होने के कारण पहली बार हल चलायी परती जमीन जैसी बीच-बीच में कट-फट कर निकलने लगी।

—अरी ओ, आसमानी नजर वाली, बाड़ी में जाने की राह के ऊपर ही पड़े गोबर के लोंदे पर से कितनी बार आयी-गयी, पर उस जगह से उठाकर क्या पान के पौधे की जड़ पर फेंक नहीं सकी ?

इस बार बात कहने के साथ ही बुढ़िया हाथ में सुपारी के कुछ छिलके लिये बैठक-खाने की ओर निकली ही थी कि हम दोनों के आमने-सामने पड़कर कुछ अप्रतिभ हो गयी। घूंघट का पल्ला खींच, सिर को एक ओर मोड़ कर पूछा—कहां से आये हैं ? पहचाना नहीं ! देर से रुके हुए हैं क्या ? अंदर आकर कुर्सी पर बैठिये। दोष-अपराध न माने देवता लोग। सुपारी के छिलके जल्दी से फेंककर आंगन की दूसरी पगडंडी से बुढ़िया अंदर चली गयी। बहू से कही हुई बात कुछ करकरी-सी ही हो तो क्या, वह तो खाने-पीने के लक्षण वाली बात है। कुछ ही देर बाद एक बूढ़ा आदमी लड़खड़ाता हुआ निकला। मास्टर ने परिचय कराया, वह हमें आदर-सम्मान से अन्दर ले गया। अन्दर भी एक आंगन था, जिसके चारों ओर छोटे घर थे। बरामदे में एक गोल चौकी पर बैठा हुआ बूढ़ा खपच्चियां बना रहा था। वहीं से उठकर आया था।

—हमारे बेटे ने जिन्हें बुला लाने की बात कही थी वह तो आप ही लोगों की बात थी न ? वह क्या पूछे, सोच न पाने के कारण बूढ़े ने यही पूछा, इसी बीच बुढ़िया गोद में नाती को और एक हाथ में एक चौकोर पीढ़ा ले हमारे पास आ पहुंची। बूढ़े की बात का उसी ने जवाब दिया—क्यों ? हमारी बहू के मामा होते हैं न ? बहू ने मुझे बताया तभी पता चला। कहीं सरकारी काम करते हैं।

बूढ़ा बुढ़िया के हर शब्द के साथ-साथ मेरे मुख की ओर देखते हुए सिर हिलाता रहा। झुर्रीदार चेहरे पर एक पवित्र हंसी की आभा चमक उठी। खपच्चियों को सहेजते हुए वह कहता गया—बेटा तो सवेरे ही नदी किनारे खेत पर गया है, साइकिल ले गया है। सनन् से आ ही निकलने वाला है। जरूरी काम था, इसीलिए गया है।

देखा, एक घर से दूसरे घर में चट्ट से लीली निकल गयी। ओढ़नी से शरीर को एक ओर ढके रखा था।

—अरी इन बाबुओं को पान-सुपारी भी अब तक नहीं दे सकी क्या ? तू ही खुद क्यों नहीं ले आती ?

बुढ़िया बहू की ओर देखती चीख उठी, फिर हमारी ओर देखती हुई बोली—बच्चे-बच्चियां भाओना घर गये हैं। आज रास-भाओना हो रहा है। दिनभर वे वहीं हैं। इसी बहाने मैंने बाल-बच्चों के बारे में पूछ लिया। बच्चे पांच हैं, तीन बच्चे, दो बच्चियां। नन्हा बच्चा है। साल भर का। स्कूल में पढ़ने वाला लड़का कहां है, पूछने पर बताया कि···लाड़ला है न! रात को उसे गोपी का अभिनय करना है, इसलिए रिहा-मेखेला ढूंढता फिर रहा है।

डरती हुई-सी ओढ़नी को खींचकर एक हाथ से एक लोटा पानी और एक हाथ में पान-सुपारी का बट्टा लेकर बहू हमारे पास आयी। बट्टे में कटी सुपारी के अलावा भी दो पान पर दो आदमियों के लिए चूरी हुई सुपारी थी। लगता था, सभी कोई बात कहना चाहते थे। मैंने कुर्सी पर शरीर को जरा-सा हिलाया भर था। हाथ बढ़ाकर मैंने बट्टे को बूढ़े की ओर बढ़ा दिया। मास्टर और बुढ़िया को देने के बाद खुद एक पान-सुपारी लेकर बट्टे को जमीन पर रख 'तुम्हारा भला है न ?' कहकर बात पूछी भर थी, तभी अचानक कसमसाती हुई संकोच में खड़ी लीली ने भी साथ ही न जाने कौन-सी बात पूछ डाली। इसीलिए कोई किसी की बात नहीं सुन सका। ऐसी दम घोंटने वाली स्थिति को सहज बनाने के लिए ही मानो लीली ने अनजाने में सास की गोद से बच्चे को अपनी गोद में ले लिया। समझा, मां की गोद सिर्फ बच्चे के लिए निर्विघ्न है ऐसी बात नहीं, बच्चे को गोद में ले मां भी बहुत कुछ निर्विघ्न हो जाती है।

—बाबुओं का स्वागत करना चाहिए। तामोल चबाते हुए बूढ़े ने आवाज दी।

—लेकिन यह तो बच्चा लेने के लिए ही आ गयी। बुढ़िया की करकराती हुई आवाज और टेढ़ी नजर।

वह बच्चे को बुढ़िया के हाथ थमाने जा रही थी कि मैंने हाथ बढ़ा दिया। आग्रह से बच्चे को मेरी गोद में आगे बढ़ा कर अब लीली बात कर सकी। 'मामा की गोद में मूत देना रे, निशानी लगा भेजना।' कहकर तभी वह अन्दर चली गयी। स्वागत का आयोजन करने उसी समय पति आ पहुंचा।

कितनी देर पहले हम आये, चाय-नाश्ता, खाना-पीना हुआ या नहीं, आदि आत्मीयता की भावना वाले प्रश्न बड़े आनेरन से पूछकर एक मोढ़ा लेकर वह पास ही आ बैठा। चाय नास्ता, खाना-पीना, पान-बीड़ी वातचीत आदि के बीच कैसे समय निकल गया पता ही न चला।

मानो शाम होने ही नहीं पायी, दिन के उजाले पर रास पूर्णिमा की चांदनी उछलकर आ पड़ी। मानो किसी नयी बहू ने घर पहने कपड़े बदलकर रास-भाओना में जाने को बूटेदार कपड़े पहन लिये हों।

पति ने रात को वहीं रहकर भाओना देखने हेतु बड़ा अनुरोध किया। हमने बताया

कि हमें दूसरी जगह भाओना देखने जाना है।

लीली ने भी रात को रहने में कुछ आपत्ति की, पूर्णिमा के दिन बूढ़े-बुढ़िया पानी भी नहीं लेते, इस कारण घर के सभी लोगों को उपवास करना पड़ता है। फिर मछली-मांस भी तो नहीं है, आदि अड़चनें बतायीं। बूढ़े ने बेटे को याद दिला दी—नयी चालान के गोभी के बीज आये तो ले आना। इस बात से बेटे का चेहरा फूल-सा उठा। सचमुच लीली का पति वास्तव में सज्जन आदमी है। लीली तब तो जरूर सुखी हो सकी है।

हम जाने के लिए खड़े हो गये। घर के सभी बड़ी हंसी-खुशी से विदा देने हेतु निकले। लीली और उसके पति दोनों बाहरी आंगन तक आये। लीली की गोद में वही बच्चा था। बुढ़िया आंगन के बीच खड़ी हुई। बूढ़ा चबूतरे पर से ही एक खंभा पकड़े देखता रहा। पूर्णिमा की झलमल चांदनी। फर्श अचानक गिरे हुए कच्चे दूध की भांति नदी, नाले सभी जगह चांदनी मानो टुकड़ों में जमी हुई हैं।

प्यार से बच्चे के दोनों हाथों में दो रुपये थमा दिये। लीली और उसके पति के मना करते रहने के बावजूद। पति ने साइकल के थैले में एक पोटली डाल दी। पूछने पर बताया घर जाकर देखें। आखिरी बार विदा ले साइकिल पर चढ़ना चाहता था, मास्टर कछ आगे बढ़ ही गया था, तभी लीली बच्चे को उठाकर कह उठी—वो···वो···मामा जा रहे हैं न, फिर आयें, कह दे।

पैंडिल से पैर उतार मुड़ कर देखा—लीली। तो इतने समय तक मैंने लीली को देखा ही न था। दो-तीन घंटों के इतने सारे आयोजन, इतनी बातचीत, घनिष्ठता, सभी कुछ झूठे थे, बेकार थे। सार्थक है सिर्फ यह आखिरी क्षण, जिसकी छाती पर मेरा वर्तमान खाक होकर अतीत जिन्दा हो उठा। सालों पहले की एक पूर्णिमा रात के एक क्षण में एक सोलह-सत्रह साल का तरुण दो सजल आंखों की चितवन कुछ खास मादकता पाकर कस्तूरी मृग-सा उद्‌भ्रान्त हो उठा था। आज के वैसे ही एक क्षण में, उन दोनों आंखों में कौन-सी चीज दिखी ? नया तो कुछ मिला नहीं, हां, क्षणभर के लिए सिर्फ उसी पुराने को वापस पा लिया। वह क्षण, पेटी से निकाले हुए रखाऊ पहनावे की भांति, पुराना होने पर भी नया है, जिसके अंगों में अब भी उसी मादकता की भीनी-भीनी खुशबू है। गृहस्थ जीवन का घेरा सबेरे खिले तगर फूल की पंखड़ियों की भांति श्वेत शुचि और पवित्र ही रहा है। कहीं एक सुपारी का छिलका तक नहीं पड़ा है। पास ही वह सास है, यहां ये पति हैं, ससुर हैं, सभी अपनी-अपनी जगह खड़े हैं, और वधू-जीवन की सारी महिमा को समेटे हुए खड़ी है वह, वही लीली, गोद में बच्चा और यह मैं हूं अपनी ही जगह।

—तो क्या लीली को मैंने प्यार किया था ? और लीली भी ? हूं···हूं···शायद···

मैं वापस जा रहा था—मेरी सवारी दो-दो जगह जोड़ लगायी कंकाल भर-सी हर पुलिस साइकिल नहीं, वह मानो चमचमाती रेली-साइकिल थी, सामने ऊबड़-खाबड़ पगडंडो न रही, पिच डाली हुई पक्की सड़क बन गयी थी। (1953)

6 पड़ोस वाले

शाम को दफ्तर से लौटकर घर में घुसते ही देखा कि पड़ोस का खाली पड़ा हुआ मकान पिलपिले बच्चों के झुंड से भरा हुआ है। सोचा था, इस नगर में यही मकान अंत तक खाली पड़ा रह जायेगा। मिट्टी के चबूतरे पर बना बांस के खंभों वाला मकान। रसोई-घर के नाम पर एक छत का बरामदा, जो एक कोने में दब-सा गया है, यानि एक कोने के बांस में बंधी गांठ छूट गयी थी। कभी इसके चारों ओर एक घेरा भी था, यहां-वहां खड़ी दो-एक खपच्चियां उसी इतिहास की घोषणा कर रही हैं। पाखाने पर जो बरामदा था उसकी ऊपरी छत आंधी से कितने ही दिन पहले उड़ चुकी है। इसके पहले जो परिवार यहां रहता था, मकान मालिक से काफी मिन्नतें करने पर भी किराये में कमी या मकान की मरम्मत में से एक भी न कर पाने के कारण अंततः विवश होकर चला गया था। फिर भी इस मकान को नगरपालिका ने अब तक निवास योग्य घोषित कर रखा है और उसी के फलस्वरूप वर्तमान फौज ने इस पर दखल स्वत्वाधिकार कर रखा है।

कितने लोग आते-जाते रहते हैं, कौन किसका पता करता है? दफ्तर की थकान के मारे हाथ-मुंह धोकर चाय लेकर हाथ-पैर फैला कुर्सी पर बैठ गया। रसोइया लड़का नाश्ते की प्लेट सामने रखकर खड़ा हो गया। समझ गया, वह कुछ कहना चाहता है।

उसने बताया, पास के मकान में नयी आयी हुई महिला कुछ सामान मांगने आयी थी। दूसरे दिन चुका देगी। उसका आदमी दोपहर से ही चावल-दाल लाने गया है, अब तक नहीं लौटा, पिछली रात भी वे भूखे रहे, दोपहर को भी चावल न था, अब भी नहीं है। मेस में रहने वाले बाबुओं से बिना पूछे वह चावल नहीं दे सकता, ऐसा बता दिया है।

कैसी मुसीबत है। आते ही चावल मांगना? कुछ कहना चाहता था, तभी देखा, पड़ोस में आयी हुई वह औरत मेरे आने का पता चलते ही दरवाजे पर आ खड़ी हुई है। जो बात कहना चाहता था, वह बदलकर 'दे दे' ही बनकर निकली।

वह चावल देने गया और मैं चाय की चुस्की लेने लगा। वह फिर लौट आया दो-चार लकड़ियां भी चाहिए। कहती है, वहां पास लकड़ी कहां बिकती है, नहीं जानती इसलिए।

जो-जो चाहिए दे दे। हमें सिर्फ यह सप्ताह चलाना है। मैं समझ गया था, वह फिर एक बार 'जरा-सा नमक चाहिए', कहने आयेगी। इसीलिए पहले से ही झंझट खतम कर दी।

इसके बाद देखा मकान के अन्दर से पिलपिले बच्चों का झुंड आकर मां के पास भीड़ बनाकर खड़ा हो गया है।

दुबले-पतले, कोई फ्राक पहने, कोई नंगे बदन पर पैंट पहने, कोई तो पूरा नंगा या

पैरों में चप्पल या कपड़े के जूते पहने। उन्हें गिनने का धीरज मुझमें न था। पर यही महिला इतने सारे बच्चों की मां होगी, मैं सोच ही नहीं पाया था। महिला के शरीर पर रंगीन साबुन से रंगी नीले रंग की एक चादर थी। कपड़े पर रंग चढ़ाने का तरीका न जानने के कारण ही हो या कपड़े को भली-भांति साफ किये बगैर रंग चढ़ाने की त्रुटि के कारण हो, समूची चादर मैली-सी दिखाई दे रही थी। मेखला पर हरा रंग चढ़ाया गया था। साथ ही उसकी किनारी के फूलों के रंग उड़ गये थे। इस कारण वह भद्दी-सी हो गयी थी।

कुल मिलाकर उसकी रंग-रंगीली पोशाक ने एक अजीब-सी मूर्ति बना डाली थी। उसकी दोनों आंखें धंसी हुई बुझी-सी थीं, गालों की हड्डियां उभर आयी थीं। लगता था, चलने में पैर किसी तरह ही शरीर को खींचे ले जा रहे थे। शरीर में ताकत नाम की चीज कहीं नहीं थी।

चावल-लकड़ी लेकर वह मंडली बिखर गयी।

मेम के और दो साथी नाथ और शरणीया लगभग साथ-साथ आ पहुंचे।

पास के मकान में आदमी आ गये हैं, समाचार उन्हें दिया। उन दोनों के चेहरे पर किसी तरह की भावना प्रकट नहीं हुई। हाथ-मुंह धोकर दोनों ही चाय ले बैठे।

चावल मांग कर ले गयी है—दूसरा समाचार दिया। दोनों के ललाट की रेखाएं सिकुड़ आयीं। पर कुछ कहे बगैर चाय की लम्बी चुस्की लेते रहे।

साथ ही दो-चार लकड़ियां भी ले गयीं। तीसरी खबर।

दोनों ने सिर ऊपर उठाये, आखें भी ऊपर उठ गयीं। तभी रसोईया लड़के ने समाचार पूरा किया। नमक और मिर्च भी ले गयी है।

—मिर्च? शरणीया चौंक-सा उठा। मेरे लिए बची रहेगी या नहीं? उसने रसोइये की आंखों में नजर डाली।

वेतन मिलने को अभी सप्ताह भर है, लकड़ी चलेगी या नहीं? नाथ उद्विग्न हो उठा।

शरणीया ने रोटी दांतों से कुतरते हुए पूछा—आते ही चावल-लकड़ी मांगने लगे? भला उसका मर्द कहां गया?

उत्तर कौन दे? उत्तर मांगा भी नहीं गया था।

'है है' चीख की एक आवाज ने हमारे अनभ्यस्त कानों को चौंका दिया। वह और कुछ नहीं, शाम होने के साथ ही बच्चों के झुंड ने विभिन्न प्रकार के कोरस शुरू कर दिये थे। मां जब तक रसोई बना न ले, तब तक का समय तो आखिर बिताना पड़ेगा। दो-एक गा रहे थे—बर बर मानुहर दोला। (बड़े-बड़े लोगों की पालकी)। दो-एक लय लगाकर पढ़ रहे थे। बछरत बारमाह शुना लराहंत (सुनो बच्चो, साल में होते बारह माह), दो-एक बच्चे स्वर लगाकर चीख रहे थे और शायद दो बच्चे गला फाड़कर रो रहे थे। हर बच्चा हाथों से एक-एक बाजे पर ताल दे रहा है..टूटी टीन, थाली, कटोरी, बांस की बनी मचान जिसके हाथ में जो आ रहा है उसी को वाद्य यंत्र बना लिया है।

हम तीनों ने एक-दूसरे के चेहरे की ओर नजर डाली। पड़ोस के मकान में सचमुच एक परिवार आ गया है। आराम के क्षणों में आगे भी ऐसे कोरस सुनने को मिलेंगे। मन को धीरज दे बाहर निकले।

रात को लौटने में करीब नौ बजा होगा। दोनों साथी तब तक लौटे न थे। रसोइया लड़के से कुछ और नये समाचार मिले। जैसे कुछ आलू और दो बत्ती भरकर तेल भी मांग ले गयी है। शाम का वह कोरस आधे घंटे बाद ही मारपीट और रुलाई-धुलाई में बदल गया था। आदि-आदि। उस समय बच्चों की कोई आवाज न पाकर समझा कि थकान के मारे खा-पीकर सो रहे हैं। लेकिन अब जो कुछ शुरू हो गया था उसे दैत्य-संगीत का नाम दें तो ठीक होगा। एक मर्द घर के अन्दर गरजता-तड़पता चक्कर लगा रहा था। आवाज से ही समझ गया, वह आदमी बड़ा मोटा-ताजा, आधा सेर कलेजे वाला होगा। घर वाली भी बराबर जवाब सुनाती जा रही है। घर वाली की आवाज में थी नमक-मिर्च की तल्खी।

—उस दोपहर को ही मर्द कहां निकल गया था। हुं, कहा था अभी दूकान से सामान लेता आ रहा हूं। बत्तख-छौनों-जैसे इन झुंड भर बच्चों को मैं भला क्या पिलाकर रखती? इस परदेश की नयी जगह न किसी से जान न पहचान, दोपहर को खाना नहीं, पिछली रात को भोजन नहीं, शाम को नाश्ता जलपान नहीं, अब नौ बजे तक मर्द का पता ही नहीं। बच्चों को मैं यहां रखूं कैसे?

पहली बातें एक ही रौ में कह गयी थी, आखिरी वाक्य पर कुछ ज्यादा बल देने के कारण आवाज फटी-सी होकर निकली। इस कारण खिंचाव के मारे कई बार खांसने लगी।

इसी बीच मर्द दुगुने जोर से गरजने-तरजने लगा। गंभीरता से कहता गया—मैं कहीं भी जाऊं, तुम सबको क्या होता है? तुम सब अन्दर के लोग समझोगे क्या? अपनी औलादों को अभी सूरज डूबते ही क्यों मरने दिया? उंह, देखो तो भला, शहर में जैसे तेरे लिए किसी ने नमक-तेल, चावल-दाल का गोला बनाकर रख दिया है कि गया और उठा ले आया?

आवाज से समझ गया कि नाटक-अभिनय में इस व्यक्ति को भीम की भूमिका निर्विरोध मिल चुकी है।

पर घर वाली जो भी कह रही थी, जहां तक हो धीमी आवाज से ही कह रही थी। पास के मकान में रहने वालों ने उसे देखा है और अब जैसे यह झगड़ा उनके कान में न पड़े, इसी कारण यह तरीका अपनाए हुए भी थी। साथ ही यह भी समझ रही थी कि यह कोशिश भी बेकार है। फिर भी इस बार जितना हो सके धीमी आवाज से ही जवाब दिया।

नमक-तेल-चावल खरीद लाने में कितना समय लगता है? शराब की दूकान तो यहां से निकलते ही पहचान ली, नमक-तेल की दूकान···

—अचानक बाधा पाकर रुक-सी गयी। खट् से एक आवाज हुई थी। शायद मर्द ने एक मुक्का लगा दिया था।

—मिला न मजा ?…मैं शराब पीऊं, मदिरा पीऊं, क्या तेरी कमाई से पीता हूं ? साल हर साल तेरे इन बत्तख-छौनों को देखते रहने से ही क्या मेरा काम चलेगा ?

उस औरत के शरीर और मन दोनों पर ही वह लगातार घूंसे चलाता रहा। मन का घूंसा संभालना ही ज्यादा मुश्किल था। पड़ोस के लोग आवाज सुन न पाएं, इसकी जो एक बनावटी कोशिश वह अब तक करती आ रही थी, इस बार उसमें असफल रही। आवाज का पहला बनावटी-पन छोड़कर घर वाली गरज उठी— शर्म भी नहीं आती—धिक्कार है—नकटा-शराबी कहीं का। ये बत्तख के छौने हैं किसके ? उस सबेरे से बच्चों के मुंह में एक दाना नहीं पड़ा—आते ही दूसरों से चावल, दाल, लकड़ी तक मांग लाने पर ही उनके पेट में दाने पड़े हैं। बड़ा मर्द बना है !

अब वह मर्द अपने कर्तव्य के बारे में सचेत हो गया। उधार मांग ले आयी है ? मेरी इज्जत डुबो दी ? कहां से लायी ? बता, कहां मांगने गयी थी ? आज, आज्ज: या तो तेरा दिन है या मेरा।

बाहर लगा घेरा तोड़ने की मड़-मड़ आवाज आयी। मकान के सिरे पर बांस की जो दो-एक खूंटियां बची थीं, जरूर उसी से एक तोड़ लाया है।

इस रात को क्या वह सचमुच मार-पीट करेगा ?

—नहीं बतायेगी ? उसकी आवाज से मेरी ही छाती कांप उठी। वह सामान्य बोली की आवाज न थी, पहाड़ की चट्टान तोड़ने की आवाज थी।

आज तुझे जयमती सजा दूंगा। बता, तू कहां से नमक-चावल लायी ? मांगते ही इस शहर में किसने तुझे सामान दे दिया ?

—चाहे जहां से भी लायी, तेरा क्या ? जवाब में झकझोरने की एक लय थी।

बाड़ी में घुसने में लपकी हुई गाय के शरीर पर मानो किसी ने एक बार चोट की हो। प्राणों की कातरता से वह चीख उठी। सिर्फ एक पुकार—आह, मर गयी रे—शाम को उसके शरीर की जो हालत देखी थी, वैसे शरीर से उससे ऊंची आवाज नहीं निकल सकती। दूसरी बार फिर एक चोट की आवाज। पर इस बार उस महिला की कोई आवाज नहीं निकली। धीमे-धीमे हिस्-हिस् जैसी आवाज आ रही थी—शायद सांस लेने के लिए धीरे-धीरे उस तरह आवाज कर रही थी। फिर वह कातर स्वर में चीख उठी, कौन हो, बचाओ। आखिर में आवाज अस्पष्ट कराह-सी हो गयी थी।

—खबरदार, अगर चीखी तो दो टुकड़े कर डालूंगा। यह अमुक भला किसकी केयर करता है ? जानती है, एक ठोकर से भोलानाथ सात पक्के मकानों को हिला सकता है।

साथ ही एक और प्रहार ! इस बार औरत समय-स्थान भूलकर जोर-जोर से रोने-चीखने लगी। शायद बच्चों का झुंड पहले ही जाग चुका था और बाप के डर से चुप

पड़ा हुआ था। अब मां को इस तरह रोते देख वे भी रह नहीं सके और सभी एक साथ रोने-चीखने लगे।

—चुप् चुप्—एक-एक कर सबका गला दबा दूंगा। तुम सबके लिए क्या अब मेरी मान-मर्यादा सब खो जाएगी ?

ओलों की भयंकर बरसात के बाद दो-एक ओलों के ठकर-ठकर गिरने की आवाज जैसी थप्पड़, घूंसे, मुक्के की आवाजें आ रही थीं।

आवेश के मारे मेरा कपाल भीग उठा था। मुड़कर देखा, मेरे नजदीक ही नाथ और शरणीया खड़े थे, मेरे चेहरे की ओर देखते हुए मुस्करा रहे थे। शायद मेरी तन्मयता देखकर।

—दो-चार बॉक्सिंग लगाकर लम्बा कर दिया जाए—शरणीया ने दांत पीसते हुए कहा।

—जो भी हो घर में आदमी तो आया आखिर—अपने अनुभव की बात कितनी गहरी थी, नाथ ने दुहराकर समझाया।

किसी की भी बात मेरी मानसिक स्थिति से मिलती न थी। तब तो वह आदमी उस महिला पर अब भी संदेह कर सकता है, कम से कम बीस-पचीस साल का वैवाहिक जीवन बिता चुकने के बावजूद भी ? नाथ मानो मेरे मन की बात समझ गया था—मूल रहस्य समझा नहीं तुमने ? धीमी हंसी से अपनी आंखों को रहस्य से गहराकर उसने मेरी ओर देखा। संदेह करने वाले और संदेह-भाजन दोनों ही एक तरह की आत्म-तुष्टि प्राप्त करते हैं। इस मार-पीट, इस तरज-गरज के कूड़े-करकट के नीचे सन्तोष की जो रसधारा बह रही है, बाहर से कोई भी उसका अनुभव नहीं कर सकता। नाथ परम अनुभवी की भांति हमसे कहता गया।

नाथ की बातें समझने की शरणीया की कोई कोशिश दिखाई नहीं पड़ी। मैं शायद कुछ-कुछ समझ गया था, तो भी साफ नहीं हो पाया हो, इसी भाव से नाथ के चेहरे की ओर देखता रह गया।

—समझे नहीं ? इस उम्र में भी संदेह करने की जब जगह है—तो इसका मतलब अब भी वह सुन्दर बनी हुई है—दोनों ओर की क्या यह कम आत्म-तुष्टि की बात है ?

नाथ की व्याख्या साफ-साफ समझकर गुस्सा दुगुना हो गया। तो क्या इतने अत्याचार, ये मार-पीट, सब कुछ झूठे हो गये ?

मगर शरणीया तो वहां जाने को ही तैयार हो गया था। उस मर्द को बाहर बुलाकर अच्छी तरह दो घूंसा लगा दे।

काफी समझाने-बुझाने पर वह शान्त हुआ। तय हुआ, दूसरे दिन उस मर्द को बुला कर, वह पास-पड़ोस की शान्ति भंग कर रहा है, यह बात समझा दी जाएगी। हालांकि कुछ डांट-डपटकर समझाया जायेगा। शरणीया के विचार से उस डांट से वह जरूर गरज उठेगा। इसके साथ ही शरणीया अपनी बॉक्सिंग से उसका जबड़ा तोड़ देगा।

इसके सिवा, अभी-अभी वहां अनाधिकार प्रवेश करने का मतलब संदेह के उस आधार को और मजबूत कर देना ही होगा। नाथ का ऐसा ही विचार था।

रोने-धोने की आवाज रुक गयी थी। बच्चे फिर सो पड़े थे।

खाने-पीने के बाद मेस के सभी लोग गहरी नींद में सो गये। पर मुझे काफी रात तक नींद नहीं आयी। पड़ोसी के यहां से खटर-पटर की आवाजें आ ही रही थीं। शायद तोड़-फोड़ की मरम्मत का काम हो रहा था। कुछ समय बाद वह भी बंद हो गयी। शायद सो गये थे। तभी भोलानाथ की बोली रूपी हथौड़ी ने रात की नीरवता की छाती पर एक जबरदस्त चोट की—मेरा खाना कहां है?

मगर मैं बिलकुल चौंक पड़ा। मेरा खाना कहां है? मतलब? तकिये पर से सिर उठाकर कान लगाया।

—मजाक देखते हो न? अब बड़े घंटे पर दूसरी चोट पड़ी—आज! खाना न मिला तो तेरी खैर नहीं।

—सभी के हाथ-पैर हैं, पकाकर खायें। बड़ी हिम्मत से पत्नी ने जवाब दिया।

कराहने की भांति एक आवाज उठी। साथ ही दबी आवाज की एक चीख से मैं बिस्तर पर उठ बैठा। शायद वह मर्द बेचारी महिला को मार ही डालेगा।

—जा···जरूरत नहीं···यह···आदर दिखाने की, जा:। सादर का मतलब क्या है? सोये हुए नाथ की ओर देखा, बेचारा बड़े खर्राटें ले रहा था। कुछ देर बाद खाली कटोरी की ठन-ठनाहट की आवाज सुनकर मन में कुछ चैन की भावना आयी।

रात के अंतिम प्रहर मे नींद आ गयी थी। सोचा था, सुबह देर तक सोता रहूंगा। अचानक शरणीया और नाथ के प्रचंड धक्के से चौंककर उठ बैठा। बाहर चमकीली धूप निकल आयी थी। पड़ोसी के घर में फौज की उथल-पुथल विभिन्न कोरस का समवेत-संगीत शुरू हो गया था।

मुझे समझने का अवकाश दिये बगैर दोनों मुझे खींचते हुए खिड़की के पास ले गये।

खिड़की के अंदर से पड़ोसी के घास से ढके आंगन की ओर नजर पड़ी। लम्बा छरहरा एक मर्द जो एक ही ठोकर से धरती चूमे एक टूटे मोढ़े पर बैठा था। पास ही मोढ़े से शरीर टिकाये पैर मोड़े कल जिस महिला को देखा था, वहीं बैठी हुई थी।

भोलानाथ तल्लीनता से एक-एक मोटी जूं, छोटी जूं, लीखें आदि पत्नी के सिर से चुनकर निकाल रहा था।

अचानक महिला की आंखें हमारी आंखों से चार हो गयी। चेहरे के काले रंग को फाड़कर मानो उसके शरीर का समूचा खून दमक उठा। संकोच से पैरों को कुछ और मोड़कर अपनी ओढ़नी को और कुछ खींच लेने का नजारा हमारी आंखों में आते-आते रह गया।

(1965)

7 चक्रवत्

मरम्मत की जाने वाली साइकिल को आंगन के बीचोंबीच डालकर बाप-बेटे चारों ओर घेरकर बैठ गये थे। हालांकि बाप अगले पहिये से ट्यूब को निकाल, उसमें हवा भरकर पानी में डुबो-डुबोकर लीक ढूंढ रहा था, बेटे उसी को चारों ओर से घेरकर तल्लीनता से देख रहे थे। बेटे यानि मणि और उसके दोनों भाई। ट्यूब में लीक रहे तो उससे निकलती हवा पानी में बुलबुले छोड़ती है। ये बुलबुले ही उनके कौतूहल की चीज हैं। इनमें से दो पर पेस्टिंग हो गयी। तीसरे के लिए बाप पुराने ट्यूब से रबर का एक गोल टुकड़ा काटकर कैंची की धार से उसे रगड़कर चिकना करने लगा। सोल्यूशन की ट्यूब पास पड़ी हुई थी। नयी ट्यूब इसी बीच खाली हो चुकी थी। मणि ने धीरे-से हाथ बढ़ाकर ट्यूब पर एक बार फेरा। नहीं, बाप ने कुछ कहा नहीं। एक बार धीरे से उठाकर फिर पहले की जगह रख दी। इस बार भी बाप ने कुछ कहा नहीं। शायद बाप ने देखा ही नहीं था। चाहे जो भी हो तीसरी बार सोल्यूशन हाथ में आ गया। कैप खोलकर नाक के पास ले जाकर उसे सूंघा। उसे यह गंध बड़ी अच्छी लगी। सोल्यूशन के बारे में उसकी एक और अजीब-सी कमजोरी है। बिलकुल नयी सोल्यूशन को एक काठ पर रखकर उसे डंडे से मारने, जोर से घूंसा मारने की इच्छा हो आती है। इससे कई ओर गोंद छिटककर निकल पड़ेगी, मगर इस इरादे को दबाये रखने के अलावा और कोई चारा नहीं है। बड़े होने पर जब वह पैसे कमाने लगेगा, पहले-पहल वह यही काम करेगा।

सोल्यूशन लिये देख दोनों भाई ललचायी आंखों से देखने लगे। वे भी एक बार उसे अपने हाथ में लेना चाहते थे। दूसरा भाई अभिभावक के स्वर में बोल उठा—न छूना, न छूना, खराब हो जायेगा। कह दें क्या बप्पा से ?

मणि ने झट सोल्यूशन को उसके हाथ में दे दिया। छोटे ने हिम्मत पा झपटकर अपने हाथ में लेना चाहा।

—ओ, कर दिया। दूसरा—चीख पड़ा। दबकर सोल्यूशन से जरा-सी गोंद निकल आयी थी। इसी बीच बाप रबर को साफ कर चुका था। सोल्यूशन हाथ से टटोलकर लेना चाहा, तभी वह हालत नजर आयी। गरज उठा—उसके मुंह से शब्दों का सोल्यूशन निकलने लगा।

—अरे तुम सबका यहां क्या काम है ? अरे उल्लू, चूहे, सियार, कुत्ते के बच्चो ? देखो न जरा चेहरे ? बाहर निकल आयी गोंद को रबर के टुकड़े में उसने लगा लिया और जो बची थी उस ट्यूब की उस जगह जहां पेंच लगानी थी, वहां लगा ली। दोनों छोटे बच्चे इसी बीच पतिंगे की भांति हवा हो गये थे। मणि सकुचाया हुआ वहीं खड़ा

रहा। बाप गंभीरता से उसकी ओर देखकर बोला — तम्बाकू कहां है ? ओ नवाब के बेटे ! तभी से एक चिलम तम्बाकू की बात कहते-कहते मुंह में दर्द हो गया। घर का एक तिनका भी हटाकर तो खाते नहीं। तिस पर खाने को सब कुछ चाहिए। दिन भर में कितनी बार खा लिया।

बात में रुकावट पड़ी। पत्नी एक हाथ में तम्बाकू का हुक्का और दूसरे में चाय का गिलास लिये पास आकर खड़ी हो गयी। बातों का प्रवाह बेटों को छोड़कर पत्नी की ओर मुड़ गया।

—अब जाकर निकली है न नवाब की बेटी। इधर तब से इस बाइसिकल की मरम्मत करते-करते मैं हैरान हो चुका हूं।

—क्या मैं भी बैठी हुई हूं ? अध-छंटा चावल ढेंकी में है, करघा कितना परेशान कर रहा है।

मां ने भी बराबर के वाल्यूम पर जवाब दिया। साथ ही चाय का गिलास भी बढ़ा दिया। दो-एक घूंट पीने के बाद गिलास को पास ही रखकर वह पेस्ट को तैयार करने में लग गया, क्योंकि गोंद सूखी जा रही थी।

गुस्से में जवाब देकर पत्नी को कुछ अनुताप हुआ। गुस्से का मूल कारण वह साइकिल ही है इसलिए गुस्सा उसी पर उतारा— यह बाइसकल या तेइसकल अब रोज-रोज कितनी टूटती है ! इसे कुठार मार कर तोड़ डालने से ही काम खत्म हो जाए। हो-न-हो दिन भर में सौ बार इसी में फंसे रहते हैं। इससे तो अब ऊब चुका हूं।

पति ने उसके चेहरे की ओर तिरछी निगाह से देखा। पत्नी ने जल्दी से दूसरी ओर नजर घुमाकर बात खत्म की — हूं।

—हुः ? अरे, बैल नहीं, जमीन नहीं, नौकरी नहीं, यह बाइसिकल ही खिला रही है, इस बाइसिकल ही का अनादर ? पति बड़बड़ा उठा। चाय खत्म होने पर गिलास ले, तम्बाकू का हुक्का थमाकर पत्नी चली गयी।

बाप कहता है, बाइसिकल, पत्नी कहती है तेइसकल, मणि कभी कहता है साइकल, कभी सार्कल। असल में यह किसी अच्छी कम्पनी की थी। बाप हरिनाथ पहले किसी चाय बागान में लड़के-लड़कियों का मुहर्रिर बनकर काम में घुसा था। उन्हीं दिनों एक साहब से खरीदी थी। उस अंचल में उन दिनों उसकी साइकिल सहित दो ही साइकिल थीं। इस बात को लेकर हरिनाथ के गर्व का पार नहीं है।

कितने ही साल गुजर चुके हैं। साइकिल का कंकाल यानी फ्रेम भर, हरिनाथ के उस अतीत के गौरवमय जीवन का गवाह रहा है। दूसरे अनेक नयी-नयी कम्पनियों के पार्ट्स के समन्वय से वर्तमान साइकिल एक कष्टकर रचना बन चुकी है। नौकरी से हटे हरिनाथ को दस साल से ऊपर हो गया है। नये-नये शिक्षित लोग निकले—वे चाय-बागान की नौकरियों में लग गये।

हरिनाथ को फिर कहीं जगह नहीं मिली। फिर भी कहीं नौकरी की खबर निकलते

ही इसी साइकिल को ले हरिनाथ दौड़ पड़ता है। नौकरी मिलती नहीं। मगर चाय-बागान के किसी पुराने परिचित कर्मचारी से भेंट हो जाती है। कोई-कोई दो-एक रुपये देकर मदद करता है। किसी-किसी से जरा-सा खराब हुए पुराने टायर-ट्यूब, फ्री-व्हील आदि मिल जाते हैं। घर आकर हफ्ते भर रेंच, हथौड़ी आदि लेकर मिस्तरीखाना शुरू कर देता है। यानी बाइसिकल की मरम्मत होती है। इसके बाद बाइसिकल पर ही हाट-बाजार आया-जाया करता है। फिर किसी दिन सुनता, कहीं एक जगह खाली है—शायद पचास-साठ मील दूर के किसी बागान में, फिर साइकिल यात्रा शुरू हो जाती।

आज पन्द्रह-बीस सालों से यह दो पहिये वाला यंत्र ही हरिनाथ के जीवन में सुख-दुख का साथी बना हुआ है। उसी पर पांच व्यक्तियों का परिवार निर्भर है। क्योंकि खेतीबारी कुछ है नहीं। पत्नी कपड़े बुनती है। हरिनाथ कपड़े बाजार या चाय-बागान में ले जाकर बेचा करता है। फिर सूत लाता है। फिर पत्नी कपड़े बुनती है। भला ऐसी साइकिल की कोई निन्दा करता है? अर्जुन भी हो सकता है कि अपने गांडीव की निन्दा कर सके। लेकिन इस साइकिल की···

इसी बीच साइकिल की मरम्मत हो चुकी थी। ट्यूब को टायर में डालकर टायर को रिम में फिट कर दिया। ऐसा करते हुए मणि की मदद अनिवार्य हो जाती है। क्योंकि टायर का आखिरी हिस्सा रिम में घुसाने में बड़े प्रयास की जरूरत होती है। टायर पुराना है, जरा-सा जोर पकड़ते ही किनारी के तार का थ्रेड छूट जा सकता है। अच्छी-सी काम लायक रेंच न रहने के कारण एक चपटे लोहे से टायर का एक सिरा रिम में घुसेड़कर दबाये रहना पड़ता है। मणि यही कार्य किया करता है। बाप एक रेंच से शेष हिस्से को रिम में घुसेड़ देता है। मणि इष्ट देव का नाम जपकर लोहे को दबाकर पकड़े रखता है जैसे हाथ से छूट न जाए। साथ ही बाप के चेहरे की ओर, उसके जरा-जरा से परिवर्तन पर ध्यान रख, तल्लीनता से देखा करता है। बाप की आंखों के नीचे की चमड़ी जैसे दर्जी कपड़े में सिकुड़न बनाता है, उसी तरह सिकुड़-सी जाती है। मणि की चमड़ी भी अपने आप सिकुड़ जाती है। फिर बाप के कपाल पर नसें फूल उठती हैं, बेटे की भी। इसके बाद बाप की जबान से प्राचीन वैदिक युग के श्लोक सरसराते निकलने लगते हैं। मणि अपनी छाती की धड़कन दबाए उसके लिए तैयार हो जाता है, वह भी मन-ही-मन उनको दुहरा जायेगा।

साइकिल फिट हो गयी। इस बार उसे खड़ा कर मणि पकड़े रहेगा, बाप हवा भरेगा। मणि अपने पैरों में असहनीय पिरपिराहट अनुभव करता है। क्योंकि अभी ज्यादा दिन नहीं हुए, नीचे पैर डालकर उसने साइकिल चलाना सीखा है।

टिलि टिलिलि!

प्रताप आ रहा है। मणि का साथी। तीन-चार दिन से वह साइकिल की सीट पर सवार हो सकता है। पैर पैडिल तक नहीं पहुंचते। इसी तरह से वह अपने बड़े भाई की नयी रैली साइकिल चलाता आ रहा है। उसका बड़ा भाई पास के चाय-बागान

में काम करता है। हर शनिवार को घर आया करता है। आज भी आया होगा जरूर।

दोनों हाथों से साइकिल को पकड़े रहकर अपनी गरदन मोड़ मणि ने प्रताप की ओर देखा। प्रताप उसके नजदीक आकर उतर पड़ा।

—अरे प्रताप, तू सीट पर सवार हो सकता है ?—प्रताप नम्रता से हंस दिया।

—क्या कुछ खराब हो गया है ?

यानी उसने मणि की साइकिल के बारे में पूछा।

मणि ने चुपचाप सिर हिलाकर आंख के इशारे से अगले पहिये को दिखलाया। हवा भरी जा चुकी थी। हरिनाथ ने, प्रताप की ओर देखा—भैया आया है क्या रे ?

जी···!

—हूं। साइकिल चलाकर दिखलाने आया है ? जानता है, इस अंचल में पहले-पहल अमुक ने ही साइकिल चलाकर दिखायी थी। इसके बाद हरिनाथ मुंह में ही बड़बड़ाता रहा—आजकल सभी नयी साइकिल चलाने वाले हो चुके हैं। लेकिन जितनी ही नयी क्यों न हो, बाहर की चमचमाहट भर है। इस हरिनाथ की-सी साइकिल जैसा पक्का लोहा वाली असली हार्डी साइकिल दूसरी नहीं है, खुद साहब की बाइसिकल है।

प्रताप हालांकि इतनी सारी खबर नहीं जानता। जानने की उम्र भी उसकी नहीं हुई। इसलिए उसने हरिनाथ की बात का मतलब भी नहीं समझा। वह सीट पर बैठकर सवारी कर सकता है, यही दिखाने के लिए मणि के यहां आया था। उसका काम हो गया, फिर वह साइकिल पर सवार हो चला गया।

हरिनाथ ने साइकिल की रेंच, पुराने नट, लोहा-लक्कड़ बटोरकर लिली बिस्कुट की एक पुरानी जंग लगी पेटी में भर लिये। यह होम्योपैथिक पेटी ही अब तक इस साइकिल को जिन्दा रखे हुए है। साइकिल की सारी बीमारियों की दवा इसी पेटी में है। हरिनाथ डिब्बी को लेकर अंदर गया। एक हाथ में हुक्का-चिलम। मणि साइकिल पर चढ़ना चाहते हुए भी रुक गया। साइकिल को एक टट्टी से टिकाकर वह थोड़ा-सा चिथड़ा बटोर लाया, साथ ही अन्दर से किरासिन की ढिबरी भी। चिथड़े को कुछ किरासिन में भिगोकर उसने साइकिल को एक तरफ से घिसना शुरू किया। फ्री-व्हील के पास काफी मैल जमा हो गया था, एक लकड़ी से जितना हो सका कुरेदकर साफ किया। चिथड़े को फांक में घुसेड़कर दोनों सिरे पकड़कर घिस दिया। स्पोकों में किरासिन घिसकर उन्हें अच्छी तरह से पोंछ दिया।

रिम, एक्सल, क्रैंक, पैडिल और तो और फ्रेम को भी अच्छी तरह घिस-घिस कर एक तरफ से साफ करता गया। इसमें अच्छा तेल तो नहीं दे सका है। मां जो नारियल का तेल लगाती है, उसमें से कुछ मिल जाता तो ! पिछले हफ्ते से ही नारियल का तेल नहीं है, मां कह रही है। सरसों का तेल और मिट्टी का तेल मिलाकर देने पर भी काम चल जायेगा। तेल डालने की कुप्पी खोज लाकर सरसों का तेल और मिट्टी का तेल मिलाकर वह तेल डालने लगा। पिछले पहिये में, फ्री-व्हील में, क्रैंक-व्हील में, पैडिल में

भी। अब वह एक चक्कर लगा भी सकता है।

आयल-केन को रख आकर टिकायी हुई साइकिल हैंडिल पकड़ सीधी की। छह-सात बार आवाज कर गठिया के रोगी की भांति कराह कर साइकिल चीख उठी। उसकी गांठ-गांठ में दर्द था, गांठ-गांठ में कराहट थी। कितना तेल देने पर भी इस कराहट को मिटा नहीं पाया है। मणि का मन दब-सा गया। तेल लगा, घिस-घिसकर साफ करने के बाद साइकिल ने धक्का-धक्की पावडर लगा, तेल-सने चेहरे का-सा रूप ले लिया था। प्रताप की साइकिल की नयी फ्री-व्हील किस तरह टिक्-टिक् आवाज करती निकल जाती है। चेन घुमाते ही कैसी कड़कड़ा उठती है। मानो कोई मुंह भरकर मुरमुरा चबा रहा हो। पर इनकी साइकिल को जहां आवाज करनी चाहिए वह फ्री-व्हील, घंटी बड़े गूंगा राम हैं। उनके अलावा पैडिल से लेकर सैडिल—यानी सीट तक, मडगार्ड से लेकर हैंडिल बार, कार्क, क्रैंक-व्हील सब कुछ एक साथ चीख पड़ते हैं। चाहे जो हो, नीचे ले जाकर एक चक्कर तो लगा लिया जाये'

कड़-कड़-कड़ात्···

चेन बीच-बीच में घाट छोड़ जाती है।

थोड़ी दूर जाकर ही वह लौट आया। साइकिल से उतरे बगैर उसे वह मोड़ नहीं सकता। मोड़ने की कोशिश कर कई बार रास्ते के किनारे के गड्ढों में घुसा दी है। लेकिन यह सामने वाला पहिया कच्-कच् आवाजें किस लिए कर रहा है? अगले पहिये की ओर बहुत-सी आवाजें उसने सुनी हैं। उल्लू जैसी दिन में अठारहों बार। मगर ऐसी आवाज पहले तो नहीं सुनी।

बाप ने अन्दर से वह आवाज सुनी। निकलकर आया, हाथ में हुक्का और मुंह में हिन्दी···

कुस काम का आदमी नाही हाय तोम। रेन्स का बाकस ले आव हियो पर—एइ निगनि पोवाली (चूहे का बच्चा)!

बाप ऐसी ही हिन्दी बोलता है। ज्यादा गुस्सा चढ़ आने पर और मन में खुशी रहे तो भी।

कान्स ढीली हो जाने के कारण अगला पहिया श्लेक होकर रिम कार्क की डंडी से लग जा रहा था। पहिये ने मणि को वही बात बतायी थी।

कान्स को कस दिया गया।

घंटे भर बाद साइकिल ने बाजार की राह पकड़ी। कैरियर पर एक बोरा पान-सुपारी, हैंडिल बार के दोनों ओर टंगी साग-सब्जियां, केले के फूल, नीबू आदि कई तरह के सामान। जरा जीर्ण थैले के अन्दर एक-दो तरह की बेचने के सामान, दो-एक बोरे, दो-एक फटे कपड़े, किरासिन, सरसों का तेल और नारियल का तेल लाने हेतु तेल की बोतलें और वह विख्यात होम्योपैथिक पेटी हैंडिल के बीच टांग ली है। दो जोड़ी नारियल के छिलके, चार-चार अंगुल निकालकर जोड़ी बांध हैंडिल बार पर डाल लिया है।

छिलकों के निचले हिस्सों ने नारियलों को टांगे रखा है। बाजार तक दो मील होगा। बाप हैंडिल पकड़े साइकिल को खींचे ले जा रहा है। मणि कैरियर के बोरे पर एक हाथ रखे साथ जा रहा है। कहीं गड्ढे आदि पड़ें, तो वह पीछे से धकेल देता है। चौथाई मील दूर से ही जानकार लोग समझ जाते हैं कि मणि की साइकिल आ रही है या जा रही है। उस दिन मणि के हाथ से तेल पाकर कराहट और बढ़ गयी, सारी राह चीखती-पुकारती गयी।

बाजार में बिक्री-बट्टा अच्छी हो जाती है। मुनाफा भी होता है। गांव में बेचने लायक कोई सामान लिया जा सकता है या नहीं, देखा। बड़ी-बड़ी पंच-मुखी अरबी, आलू, नगा-चटाई आदि की कीमत उस दिन सस्ती थी, गांव में अच्छा मुनाफा हो सकेगा। भाइयों के लिए एक पैसे के नकुलदाने लिये—लड़ाई से पहले का जमाना था, एक पैसे की कीमत थी।

लगभग पहले के बराबर बोझा लिये साइकिल घर की ओर बढ़ी।

घर आ ही पहुंचा था, सिर्फ दो फर्लांग रह गया था। भाई और मां ने अगर कान लगाया होगा तो साइकिल की आवाज सुनी होगी जरूर। वह दुर्लभ आवाज भी तो एक ही साथ रुक गयी।

धकेल, धकेल।

मणि का हाथ पैंट में—नकुलदाने पर था। अगर एक-एक दाना खाता चले तो फिर भाइयों के लिए बचेगा ही नहीं। जेब के अंदर नाखून से कुतर-कुतर कर जीभ को भिगोये रखने की कोशिश समूची राह करता आया है। साइकिल को धकेलने के लिए जल्दी से हाथ निकालते ही बहुत से नकुलदाने गिर पड़े। जिस पर किनारे की सिलाई फट जाने के कारण जेब भी सूखी-नहर-सी बन गयी है। हाथ छोड़ते ही मुसीबत है।

परन्तु जबकि पहिया न घूम रहा हो तो उसकी तुलना में, भला यह नकुलदाना कौन-सी चीज है? धकेलने पर भी पहिया हालांकि घूमा नहीं। पिछले पहिये में कान्स जाम हो गया। बाप की जबान से पहले तो हिन्दी, इसके पश्चात प्राग्‌वैदिक-संस्कृत निकलने लगी। उंह। आज तो साइकिल जुलू भाषा की भी गालियां सुनने को तैयार थी। वह टस से मस न हुई। कुछ बोझा उतारकर अच्छी तरह दो-चार बार धक्के लगाये। बेकार। मणि ने पैडिल घुमाना चाहा। ओ, यह फ्री-व्हील तो दोनों ओर घूम रही है। दायीं ओर घुमाने पर साइकिल चलती है, बायीं ओर घुमाने पर ही सिर्फ फ्री-व्हील घूमती है। लेकिन अब तो वह दोनों ओर फ्री है। गयी जहन्नुम में। जरूर फ्री-व्हील की स्प्रिंग टूट गयी है। विरक्ति के मारे हरिनाथ ने पिछले पहिये में और दो-चार बार धक्के दिये। पहले भी तो फ्री-व्हील बीच-बीच में लगती न थी। स्प्रिंग छूट-छूट जाती थी। धचक देने पर ही फिर लग जाती। अभी पहिया ही अगर घूम सके तो काम चल जायेगा।

हरिनाथ ने साइकिल को बल लगाकर पीछे की ओर धकेला। कान्स कुछ ढीली

हुई। कुछ समय पीछे की ओर धकेलने के बाद जब पहिया अच्छी तरह घूमने लगा तो फिर सामने की ओर ले आया। पहले की जगह पार कर और दो-तीन बांस ही साइकिल आगे बढ़ी थी, फिर पहिया रुक गया। पहले की व्यवस्था ही दुहरायी। साइकिल फिर कुछ दूर आगे बढ़ी। फिर पहले की बात। चार-पांच बार आगे-पीछे करने के बाद घर के पास पहुंचे। फिर जाम हो गयी। घर जाकर होम्योपैथी करनी ही होगी, लेकिन अब तो इसे आसुरी-चिकित्सा की आवश्यकता हो गयी है। गुस्से के मारे शरीर का पूरा बल लगाकर साइकिल खींची। बेटे ने भी नकुलदाने की आखिरी आशा छोड़कर दोनों हाथों से धक्का लगाया। कड़त-कड़ गोलियां शायद चूर-चूर हो गयी थीं। लेकिन साइकिल चली। साथ ही रिम पर खंटा-खंटा कर कुछ गिरने की आवाज आयी। उहूं, भला मणि की जेब के नकुलदाने वहां क्यों गिरेंगे? देखा पिछले पहिये की गोलियां नाच-नाच कर निकली आ रही हैं अन्दर से। जरूर कान्स टूट गयी है या हाबूस के घाट टूट गये हैं। मणि ने एक कागज पर गोलियों को चुनकर बटोरा। कई गोलियां नहीं मिलीं। यथा लाभ। घर के बाहरी दरवाजे तक पहुंचे। मगर अब थोड़ी दूर कैसे ले चलें? बेटे को हैंडिल पकड़ने को दे हरिनाथ ने पिछले पहिये को सामान समेत उठा लिया। अगला पहिया रो-रो कर और पिछला पहिया हंस-हंस कर अन्दर गया। फिर सात दिन, सात रात होम्योपैथिक, आसुरी—नाना प्रकार के इलाज चले। टूट-हाट, घुट-हाट, आवाज से दोपहर रात तक पड़ोस के दो घरों के लोग भी उन दिनों सो नहीं पाये। पहली दो रात मणि की मां ने सोने की बड़ी कोशिश की थी। लेकिन विफल हो तेइसकल की छत्तीस पीढ़ी का उद्धार कर उसी ढिबरी के उजाले में तकली में एंडी का सूत कातने लगी थी। मणि को तो नींद आ ही नहीं सकती, साइकिल उसे चाहिए ही और छोटे-छोटे मरम्मत के काम देख-देखकर उसे अच्छा भी लगता है। बाप की बुद्धि पर उसकी गहरी आस्था है। बाप साइकिल की जिस तरह पच्ची लगा सकता है, उसके विचार से बाप चाहे तो फ्री-व्हील चेन आदि दो-चार चीजों के अलावा घर पर ही एक नयी साइकिल बना सकता है। बायीं ओर की पैडिल निकल गयी थी। लकड़ी का एक टुकड़ा छेद कर लगा दिया, बन गयी पैडिल। चेन टूट गयी थी। एक कांटी मार दी रिपिट कर। फ्री-व्हील की स्प्रिंग—वह महीन तार—अभाव में ट्यूब का एक टुकड़ा काटकर महीन कर लगा दिया, चल गयी फ्री-व्हील। कहते हैं कहीं एक बार बाल-ट्यूब फट गयी थी तो एक जोंक पकड़ कर लगा दी थी और बाल-ट्यूब का काम चला लिया था बाप ने। बायी ओर की क्रैंक, एक्सेल घिस जाने के कारण अच्छी तरह सख्ती से लग नहीं रही थी। टीन का एक टुकड़ा काटकर एक्सेल के चारों ओर लपेट देते ही सख्ती से बैठ गयी। कटर पिन ढीली हो गयी थी; बस वही एक ही उपाय; टीन काटकर पच्ची लगा देते ही काम हो गया।

रात-दिन पहिये ऊपर किये पड़े रहने के बाद साइकिल फिर दीवार से टिककर खड़ी हो सकी।

दोपहर को खाना खाने के बाद हरिनाथ चित्त लेटा सप्ताह भर की थकान मिटाने

की कोशिश करता रहा। मणि एक ओर बैठा था। तकली ले मां भी एक ओर बैठी थी। दोनों छोटे भाई टूटे कप के टुकड़े ले गोटी खेल रहे थे। तीनों के चेहरों पर कुछ चैन का भाव था। आखिर जो हो साइकिल की मरम्मत तो हो गयी। किस्मत से पिछली बार बाजार में कुछ सस्ता पाकर चावल कुछ ज्यादा ही खरीद लिया था। अगर दोनों जून खाते तो सब अब तक खत्म ही हो चुका होता। हालांकि पिछले चार-पांच सालों से एक जून ही खाना खाते रहे हैं। अतः अब समूचे परिवार का यही स्वाभाविक नियम-सा बन गया है। मणि का छोटा भाई, जो कुछ समझने लायक हो गया है, वही जानता है कि लोग एक जून ही खाना खाते हैं।

हालांकि मणि इतने व्यापक ढंग से नहीं सोचता। उसकी नजर टिक कर रखी हुई साइकिल पर थी। कितनी कोशिश के बावजूद उसे चमकीला नहीं बना सका। हैंडिल का डंडा कैसा एक रोगी-सा बन गया था। पहिये सामान्य रूप से दब से गये हैं। टायर में तीन जगह पच्चियां लगी हैं। दो जगह अंदर एक-एक टायर का टुकड़ा लगा कर डबल टायर किया गया है। वे दोनों जगहों को देखने में कुछ फूली-सी लगती हैं। पूरी हवा भर टायर को टनटनाया बना रख पाते तो यह साइकिल भी सन-सनाती हवा से बातें करती न? हवा ज्यादा भरने पर टायर निकलकर दौड़ पड़ेंगे—बर्स्ट हो जायेगी। प्रताप की साइकिल तो जिस ओर निकल जाती है, टायर के बीच के फूल की निशानी बड़े सुन्दर ढंग से बनी रह जाती है। प्रताप की साइकिल की छड़ें चलने के साथ-साथ कैसी चिक्-चिक् कर उठती हैं। उस दिन प्रताप ने उसे कुछ देर चढ़ने दिया था। पैडिल मारा है या साइकिल खुद ही चली जा रही है, पता ही नहीं लगता। उसकी साइकिल में तो सात बार पैडिल मारने पर भी पहिया ज्यादा से ज्यादा चार बार ही घूमता है।··· देखते-देखते उसकी साइकिल एक बिल्कुल नयी रैली साइकिल-सी हो उठी।

—मैं कल सुबह एक चाय-बागान में जाऊंगा। सुनते हैं, वहां के समूचे स्टाफ को डिसमिस कर दिया है। नये स्टाफ लिये जायेंगे। देर तक मौनता के बाद बाप ने पहली बार कहा—। मुझे वह रामनाथ कह गया है। वह भी जायेगा। मां को हालांकि उसमें कोई नयापन नहीं मिला। ऐसी नौकरियां न जाने कितनी बार खाली हुई हैं। मिलते-मिलते भी मिलतीं नहीं। कितने साहबों ने कितनी ही बार एड्रेस ले रखा है। लेकिन मणि की आंखें चमक उठीं। बहुत सारी नौकरियां हैं? तब तो एक जरूर मिलेगी। इस बार मिलेगी ही।

—इस बार मिलेगी ही। अचानक उसके मुंह से निकल गया। हां, देख लड़के की जबान से जब निकली है—तब तो बात जरूर बनेगी। देख तो मणि, एक उंगली पकड़ ले। गुलाब और कमल। हरिनाथ इसी तरह सगुन-विचार करता है। दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्यमा दोनों उंगलियां नाक के दोनों ओर खड़ी कर मणि की तरफ फैला देता है—गुलाब और कमल, या ऐसा ही कोई दो नाम लगा कर। एक में पकड़े तो मिलेगा, दूसरे में आशा नहीं।

मणि ने भगवान के बहुत सारे नामों से कुछ नाम एक ही साथ याद कर खप्प से एक उंगली पकड़ ली।

—गुलाब ! मिलेगी। मिलने की आशा है।

मणि को लगा कि वह कूदकर जा साइकिल पर चढ़ जाए।

—मिलने पर पहले वेतन से एक नयी साइकिल। दोनों भाइयों ने भी समझा कि कुछ पाने की चर्चा हो रही है।

—उंह, मेरी कमीज !

—मेरे जूते, बप्पा ! सबसे नन्हे भी यह बात कह सका।

मां ने देखा, बात तो कुछ ध्यान देने लायक हो गयी है। कुछ कहा तो नहीं जा सकता; मिल भी सकती है। फिर भी पहले ही हठ करने के कारण मां को उनपर गुस्सा आ गया। ये ही कुलक्षण हैं, नहीं तो क्या मिलने वाली नौकरी भी मिलती नहीं ? लोगों के एक-एक बच्चे होते हैं, जिसके पैदा होते ही धन-धान से घर भर जाता है। उनके ये तीन हैं और एक के आने की आशा भी दीख रही है, कहां चूने की हांड़ी, सूखी की सूखी। रे कुलक्षणी गजमत्थे, और आशा करते रहो; तीन सालों का लगान बकाया पड़ने के कारण घर की जमीन भी जाने वाली है। पढ़ने की किताब नहीं, फीस के पैसे नहीं, इसे साइकिल ही पहले चाहिए।

बाप मजे ले रहा था। आजकल ऐसी बातों से उसे दुख नहीं होता। इसलिए ऐसी बातों में मजे लेता है। लेकिन साइकिल की बात ने उसे गम्भीर कर डाला। साहब की साइकिल ! असली स्टील की। पूरी की पूरी हार्डी। ऐसा लोहा कहां मिलेगा। पार्ट्स बदल लिये जाएं तो काम हो जायेगा। रंग देने पर वही नयी हो जायेगी। जब तक चलती रहे, चला ले जाना चाहिए।

ऊ, यह तो चक-चक नहीं करती, न टिक्-टिक् करती है। ब्रेक नहीं—घंटी भी नहीं—चलाने में ऐसा सख्त है कि बल लगाना पड़ता है।

सख्त ही तो होनी चाहिए। ढीली क्यों चाहिए ? एक नयी फ्री-व्हील लगा दे तो टिक्-टिक् करेगी। रंग देने पर चकमक करने लगेगी, फिर ब्रैक, अरे धीरे चलाने से ही तो होता है। मैं जब चलाया करता हूं तो ब्रेक-फ्रेक कुछ की जरूरत हीं नहीं होती। तू चढ़ना नहीं जानता, इसलिए तेरे चढ़ते ही खराब हो जाती है। मणि के कान में बप्पा की कोई बात घुस नहीं रही थी। वह देख रहा था, नयी बाईस इंच की साइकिल पर वह फन-फनाता चक्कर लगा रहा है, वह भी सीट पर सवार होकर पैडिल भी मार रहा है। वह प्रताप जैसी ऊंची साइकिल नहीं।

नौकरी के उद्देश्य से रामनाथ और हरिनाथ की साइकिल-यात्रा शुरू हुई। दोनों हमउम्र थे। लगभग एक ही समय में दोनों की नौकरी छूटी थी। आमतौर पर जिनकी नौकरी छूट जाती है वे न घर के होते हैं, न घाट के। न घर की खेती-बारी कर सकते

हैं, न व्यापार कर सकते हैं, न नौकरी ही मिलती है। रामनाथ की कुछ जमीन-जायदाद थी। पत्नी के कुछ गहने भी थे, और जवानी में लगी शराब की लत भी थी। जमीन-जायदाद, गहने और शराब की लत—ये साथ-साथ नहीं रह सकते। इसलिए पहली दोनों ही घर से हवा हो गयी। हालांकि रामनाथ के उद्यम और फुर्तीलापन इससे काबू नहीं हुए—वह बाबू बना ही हुआ है।

मगर रामनाथ की साइकिल भी है। इस अंचल में पहले-पहल इन्हीं दो आदमियों ने साइकिलें दौड़ाई थीं। हरिनाथ खुद मरम्मत नहीं कर सकता इस कारण हरिनाथ की साइकिल से भी रामनाथ की साइकिल की दुरवस्था ज्यादा है। घंटी और ब्रेक नाम की चीजें सृष्टिकर्ता ने किसी जमाने में साइकिल के लिए सृजन की थीं, रामनाथ की साइकिल या बाइक को देखने पर विश्वास करना कठिन होता है। (रामनाथ बाइक कहता है)। पिछले पहिए का मडगार्ड नहीं है, अगले पहिए में मडगार्ड जैसी एक फुट-भर की जराजीर्ण चीज आत्मरक्षा किये हुए है। वही घंटी और ब्रेक का काम करती है। उस पर पैर चढ़ाकर दबा देने पर भी पहिया रुक सकता है। शेष सभी समय खड़क-खड़क-सी आवाज करना ही उसका काम रहा है। पहिये के टायर सांप के शरीर की भांति चिकने और कागज जैसे झीने हो चुके हैं। पिछले पहिए में कई जगहों में स्पोक नहीं हैं, जिससे रिम में एक बड़ी-सी दरार हो गयी है। चलाते समय लगता है, पीछे की ओर से कोई सूत्रधारी नाचते हुए चला जा रहा है। सीट पर तरह-तरह के कपड़े लपेट-कर मजबूत, साथ ही कोमल भी बना लिया गया है। ऐसी स्थिति में दुनिया की और सारी चीजें अचल हो सकती हैं मगर रामनाथ की साइकिल का चलते रहना ही धर्म है।

हूं, रामनाथ को भी एक नौकरी चाहिए। मणि सोचा करता। वे उसे चाचा कहा करते हैं। चाचा रामनाथ का लड़का जीवन उसका हमजोली है। बेचारे जीवन की भी तो साइकिल नहीं है। नौकरी मिल जाए तो दोनों ही दो नयी साइकिलें लेंगे। सप्ताह-भर और कोई काम नहीं, दोनों साइकिल पर ही चक्कर लगाते रहेंगे, लगाते ही रहेंगे।

उसे साफ दिखाई पड़ा—बाप और चाचा दोनों की साइकिलें बीस मील राह पार कर गयीं। चाय-बागान के गेट के पास ही साहब खड़ा था। दोनों धप्प से उतर गए, सलाम की। साहब ने हाथ मिलाया। तुरन्त दफ्तर में बुलवा लिया। पिता की साइकिल साहब ने कई बार देखी। चाहे जो भी हो, आखिर साहब की साइकिल है। बाप ने तुरंत अपनी अंग्रेजी और हिन्दी में साहब को समझा दिया, फाक्स साहब की साइकिल थी। उन्हीं दिनों साहब ने उसकी कीमत पन्द्रह रुपये ली थी। ए बेरी-गुड साइकिल साहब, पक्का स्टील, वट माई सन् मणि—धत्, भला उसकी बात किसलिए कहेंगे? उसकी चर्चा न करने पर भी तो साइकिल की मर्यादा बच जायेगी। इसके बाद अपाइंटेड।

इन शब्दों का अर्थ और प्रयोग मां और छोटे भाई भी जान गए हैं।

परन्तु उसी बार यात्रा में यह पहली बार रामनाथ की साइकिल अचल हो गयी, अगले पहिए की ट्यूब बर्स्ट हो गयी। हरिनाथ की क्रैंक व्हील भी खराब हो उठी! बूढ़ी घिर्री के दांत तो नहीं रह गए हैं, चेन नहीं पकड़ती थी, दोनों राह के किनारे के एक पेड़ की छांह में बैठ गए। एक बीड़ी का कश लेते ही हरिनाथ की बुद्धि के भंडार का दरवाजा खुल गया। पेटी निकालकर रेंच, प्लास, हथौड़ी निकाल ली। घंटे भर के अन्दर रामनाथ की साइकिल की मरम्मत हो गयी। हालांकि क्रैंक-व्हील की मरम्मत नहीं हो सकती। तय हुआ, रामनाथ अपनी साइकिल चलायेगा, हरिनाथ अपनी साइकिल पर सवार हो एक हाथ से रामनाथ का शरीर पकड़े रहेगा। सिर्फ पांच मील की ही राह है। अतः रामनाथ खींचे ले चल सकेगा।

उधर मणि ने अपनी दो उंगलियां नाक के पास कुछ देर तक पकड़े रखकर आंख मूंदकर जाप किया। एक बकुल, एक तगर, बकुल में पकड़े तो मिलेगा, तगर में पकड़ने पर निष्फल। छोटे भाई को प्यार से बुलाकर दोनों उंगलियां फैला दीं।

—पकड़, भोला···पकड़—, अगर ठीक से पकड़ा तो नकुलदाने मिलेंगे। उस दिन जो खाये थे न? उसने नकुलदाने की लालच से दोनों उंगलियां झपट कर पकड़ लीं।

—भोंदू कहीं का! बिल्ला! एक को पकड़ना।

दूसरी बार फिर मंत्र पढ़कर उंगली फैला दी। इस बार तगर में पकड़े तो मिलेगी, बकुल में पकड़े तो नहीं मिलेगी। भोला ने गाली खाकर डर के मारे बकुल में पकड़ लिया। तीन बार में ही विचार पूरा होता है। इस कारण आखिरी बार बहुत देर तक मंत्र पढ़ते हुए दोनों उंगलियां फैला दीं। कमल और अड़हुल। कमल में मिलेगा, अड़हुल में निष्फल। कमल वाली उंगली युक्ति से कुछ ज्यादा आगे बढ़ा दी। कमल मिल गयी, मिलेगी ही।

मां करघे पर से सुन रही थी। देव-लड़के की बात है—किस्मत बदलते कितनी देर लगती है। उनके पास आकर खड़ी हो गयी।

मणि खुशी से चीख उठा। उस दिन का बनाया एक घिला पीठा (चावल की बनी मिठाई) है क्या? एक भोला को दे। उसने उंगली पकड़ी है।

—अरे चार गंडे घिलापीठा क्या अण्डे देते रहेंगे? टपाटप खा लिया बस छुट्टी हुई। देखूं तो जरा-सा धान ले आ। मैं सगुन विचारकर देखूं जरा।

बच्चे मां के पास आ गए। मणि दौड़कर मुट्ठी-भर धान ले आया।

कुछ धान लेकर मां ने मन ही मन मंत्र जाप किया, यानी भगवान के कई नाम एक साथ जपे। इसके बाद जमीन पर धान बिखेर दिये। एक जोड़ी, दो जोड़ी, तीन जोड़ी। सभी जोड़ी-जोड़ी हो गये। पहली बार के सगुन विचार में तो नहीं मिलेगी ही बताया। दूसरी बार देखा जाये, एक बिजोड़ था। सबका उत्साह बढ़ गया।

फिर जमीन पर रेखाएं लिखकर देखा। बहुत-सी रेखाएं जोड़ी-जोड़ी हो एक रेखा ज्यादा हुई। मिलेगी ही। बाप के आज लौटने की बात है। नौकरी मिलनी चाहिए,

अगर ईश्वर ने कृपा की। मणि की दोनों आंखें नयी साइकिल के स्पोक की भांति जगमगा उठीं।

एक आवाज बहुत दूर से तिरती आ रही है। उनकी साइकिल की ही है, ठीक। मां-बेटों ने कान लगाये। यह आवाज उनकी साइकिल की ही होगी। मणि राह पर दौड़ गया। हां, बप्पा आ रहे हैं—साइकिल धकियाते हुए। साइकिल के बहुत-से पुराने पार्ट्स—क्रैंक-व्हील, पैडिल, टायर, ट्यूब आदि साइकिल के चारों ओर टांगे ले आ रहे हैं। साइकिल के शरीर से टकराकर वे लोहे एक अद्भुत समलय की सर्जना कर रहे हैं। चाचा रामनाथ भी साइकिल धकेलते चले आ रहे हैं। उनके अगले पहिए के फार्क के दोनों ओर बांस की दो खपच्चियां मजबूती से बंधी हुई हैं। फार्क टूट गयी होगी जरूर। हिलते-डुलते लड़खड़ाते लिये आ रहे हैं।

मणि ने आगे बढ़कर साइकिल को पकड़ा। रामनाथ बाहर अपने घर चला गया। साइकिल के बहुत सारे पार्ट्स आये हैं। किसी चाय-बागान के किसी कर्मचारी दोस्त के फेंके हुए पार्ट्स। घर सप्ताह-भर कारखाना बना रहेगा, इसमें सन्देह नहीं। मां ने जल्दी से एक कप चाय का इन्तजाम किया। पहले एक चिलम तम्बाखू सजा दी। मणि चीजें ढोने लगा। चावल, चीनी की दो छोटी-छोटी पोटलियां भी थैले में आयी हैं। शायद खरीद लाये हैं। कुछ पत्ती चाय भी। चाय बागान के किसी कर्मचारी से मांग लाये हैं। इस तरह प्राय: ले आते हैं?

परन्तु यह क्या? साइकिल की फ्रेम की जोड़ तो खुली हुई है। क्रैंक के पास की जोड़ छूट गयी है।

उंगली से उसने उस जगह की जांच की। बाप ने डांट दिया—रहने दे, रहने दे, तू अपना काम कर। उंगली से छूने पर जोड़ ठीक हो जाने का कोई मंत्र नहीं है। मिस्त्री के यहां से जुड़वा लाने पर ही होगा। फ्रेम तो ठीक ही है—असली हार्डी। पहिये, पैडिल, क्रैंक, सब कुछ खोल-खालकर खाली फ्रेम को दीवार से टिकाकर खा-पीकर जब सभी को फुरसत मिली, तब तक सूरज ढल चुका था। आज तो फ्रेम को मिस्त्री के यहां ले जाया नहीं जा सकेगा। हरिनाथ का शरीर बड़ा थक गया था। बिस्तर पर जरा लेटे बगैर बड़ा लाचार हो गया है।

पहले की भांति ही सभी एक जगह आ जुटे। नौकरी की खबर जानने हेतु सभी उतावले थे, मगर पूछने की हिम्मत नहीं होती थी। मिली तो नहीं ही है, फिर भी क्या हुआ है जानना चाहिए। साहब ने पता रखा होगा, सर्टीफिकेट भी देखा होगा।

नौकरी खाली थी एक, आउटडोर में पूरे स्टाफ के डिसमिस होने की बात झूठी थी। सत्तर के लगभग लोगों ने जाकर मुलाकात की थी। वे बूढ़ों को नहीं रखते, एक नौजवान को ही रख लिया। मैट्रिक पास।

मकान बनने के ठेके मिल सकते हैं। साहब ने पता रख लिया है। बस्ती के मकान। बांस-सरकंडों के ठेके भी मिल सकते हैं। लेकिन इसी बीच सिलहटी लोग भर गये हैं।

बागान के ठेके उन्हें ही मिला करते हैं।

कोई भी रहेंगे नहीं, ये साहब सुबह सब चले जाएंगे। पिछले दो साल साहबों के देश में जो बड़ी लड़ाई लगी थी, वह अब भारत में आ पहुंची है। साहबों को देश छोड़कर चले जाना होगा। तब बहुत सारी नौकरियां, बहुत सारे ठेके निकलेंगे।

हुक्के का कश लेते हुए निर्विकार भाव से बाप अपनी बातें कहता गया। बहुत-सी नौकरियां, बहुत-से ठेके निकलेंगे। बहुत रुपये होंगे। मणि ने सोचा, वह भी बड़ा बनेगा। रुपये कमायेगा। एक साइकिल, एक नयी चमचमाती साइकिल।

परन्तु—परन्तु कमरे में पड़े हुए पर्वत जैसे ये औजार, पुर्जे आदि? इन्हें फिट करना कब तक खत्म होगा? क्या यह साइकिल फिर पहले जैसी खड़ी हो सकेगी?

हरिनाथ ने भी पहले-पहल कमजोरी का अनुभव किया। टूटे हुए पुर्जे चुनो, जोड़ लगाओ, पच्ची-लगाओ, कितने सारे काम हैं। शरीर की सारी नसें मानो सिकुड़ उठीं। साइकिल के टुकड़े-टुकड़े पुर्जों की भांति उसके शरीर के पुर्जे भी निस्तार हो गये हैं।

परन्तु साइकिल की तो मरम्मत करनी ही होगी। बाजार-हाट करनी ही पड़ेगी उसने पत्नी की ओर देखा, वह रेशम की मेखला पहने हुए है। विवाह के दिन का रेशमी मेखला—असमीया नारी या तो बड़े सुख की या बड़े दुख की स्थिति में घर में रेशम की मेखला पहनती है। पिछले दो साल से वह उसे एक साधारण मेखला भी दे नहीं पाया है।

मगर मणि ये बातें सोच नहीं सका है। उसकी नजरों के सामने साइकिल के पुर्जे नये रूपों में अचानक जगमगा उठे। फ्रेम नये रंग और किनारी पर लाल रेखा लिये तिरबिराने लगी। क्रैंक, रिम सबका रूप बदल गया। देखते-देखते सब कुछ मिलकर एक बिलकुल नयी रैली साइकिल बनकर प्राणों के आनन्द से भन-भनाने लगी। मणि के कूदकर चढ़ जाते ही अपने आप साइकिल चलने लगी। टिक्-टिक्-टिक्... फर्ट-फर्ट... टिलिंलि-टिलिंलि—। टिलिंलि टिलि डं डं—बाहर साईकिल की घंटी। जरूर प्रताप आ रहा है।

लेकिन अचरज की बात, आज हरिनाथ का मन प्रताप की साइकिल को देखकर ईर्ष्या से भर नहीं उठा। नये-नये लोग निकल रहे हैं। नये-नये नौजवान। बूढ़ों को हटा दे रहे हैं, नौकरियों से, कर्मक्षेत्र से। नयी-नयी साइकिलें निकल रही हैं। साहब की साइकिल हो या देशी लोगों की साइकिल हो, बात एक ही है।

उसकी साइकिल तो पक्की स्टील की थी न? फिर भला उसका जोड़ टूट क्यों गयी?

(1958)

8 कानी उंगली

नयी बहू देखने के लिए लोगों का तांता तेल की धार बहने जैसा लगा रहता है। अगर देखा जाय तो विवाह की अपेक्षा विवाह के बाद के कई दिन ज्यादा भीड़-भाड़ रहती है। दूर के गांव से भी लड़कियां, बुढ़ियां, युवतियां, बहुएं आदि नयी बहू को देखने के आग्रह से, यों आती रहतीं, ताकि वहीं खाना-पीना भी हो सके। नयी बहू थी सोमेश्वर की पत्नी योगेश्वरी। नयी बहू की स्वाभाविक लाज की अपेक्षा भी एक और बात से बहू-बेटियों के रंग-तमाशे, हंसी-मजाक, के बीच भी योगेश्वरी के लिए मानो समय काटना पहाड़ जैसा हो गया था। इन लोगों का तांता कब कम हो, कब वह पुरानी हो जाये, सिर्फ यही उसकी एकमात्र चिन्ता थी। घर में जम जाने के बाद चाहे सभी यह बात जान जायें, परन्तु पहली धूमधाम के बीच ही लोगों को उसका पता चल जाना क्या कम शर्म की बात होगी ? पर जहां शेर का डर वहीं रात होती है। इतने सारे प्रयत्न भी विफल हो गये, बहू देखने आने वाली औरतों की गूढ़-दृष्टि से वह बात पकड़े जाने में ज्यादा देर नहीं लगी।

एक नन्हीं-सी लड़की ने पहले-पहल वह बात कह ही डाली—नयी बहू की उंगली देखो न कैसी है। बात योगेश्वरी की छाती में सर्र से लग गयी। उसने जहां तक हो सका, वह उंगली सिकोड़ ली। पर जब पकड़ी गयी, तो छिपाकर क्या होगा ? वहां उपस्थित किसी-किसी ने होंठ दबाकर हंस दिया। किसी-किसी ने आंखों-आंखों में बातें कीं, दो एक प्रौढ़ाओं ने आंख के इशारे से चुप रहने को कहा, तभी वे चुप रहीं।

सोमेश्वर के साथ जब से विवाह की बातचीत चली थी, लड़की के घर वालों ने हर तरह की व्यवस्था दृष्टि में ली जिससे कि बात लड़के के घर के किसी के कान में न पड़े। जिस दिन ये लड़की देखने आये, वे सावधान रहे जिससे कि पहली बार की भांति गलती न हो जाये। पहले सिर्फ इसी बात से कई रिश्ते छूटे हैं। लड़की देखभाल कर, खा-पीकर बिदा लेते हैं। बाद को जवाब भेज देते हैं, लड़की बुरी न थी, लेकर उठा भागने लायक नहीं—न उठाकर फेंक देने लायक ही—लेकिन···

अतः योगेश्वरी के मां-बाप बड़ी सोच में पड़े हुए थे। गांव की लड़कियां एक-एक कर निकल गयीं लेकिन योगेश्वरी को ही पड़े रहना पड़ा—सिर्फ एक ही बुराई के कारण। नहीं तो योगेश्वरी भी खूबसूरत लड़की ही थी—काम-काज में निपुण घर चलाने वाली परन्तु आखिर हो क्या ? अपनी किस्मत ठहरी।

सोमेश्वर अकेला था। अपनी स्थिति को मजबूत करने के बाद मन की उमंग से विवाह का आयोजन किया था। कई जगहों से लड़की देने आये थे। मगर गांठ जुड़ी तो

इसी योगेश्वरी से। वैवाहिक संपर्क के लिए दोनों ओर से वंश, गुरु गोसांई, राशि-लग्न, सब कुछ भली-भांति मिल गया—विवाह भी सुन्दर ढंग से हो गया। विवाह के दूसरे दिन से घर का पूरा उत्तरदायित्व उसी पर रहेगा—अब सद्नामी-बदनामी अकेले उसे ही अपने सिर पर लेना है। वह सोचती है—वह कितनी असहाय है। उसके पैर की वह कानी उंगली ही उसका काल हुई। दूध में गोबर की छिटकी की भांति उसने उसके सारे गुणों को मिट्टी में मिला दिया।

कदमी की बूढ़ी मां ने जाते समय सोमेश्वर से कहा—तूने भला क्या देखकर शादी की थी ? क्या किसी की नजर नहीं पड़ी ?

सोमेश्वर का चेहरा फक्-सा हो गया। होने की बात भी थी। बड़ी आशा-भरोसा से विवाह का आयोजन किया था—अब अगर दसों-बीसों के मुंह से बुराई ही निकले, तब तो उसका सब कुछ मिट्टी में मिला।

फिर भी उसने थूक निगल कर पूछा—क्या हो गया ?

पैरों की दो कानी उंगलियों को देखना तो जरा, अरे तिलक लगा, तिलक। भला, लड़की देखने के लिए किसे भेजा था ? हमारे जैसों की तो याद ही नहीं आती न ? हम जैसे जाकर कुछ हिस्सा बंटा लेंगी न ? धीमे-धीमे बात कहकर कदमी की मां हनहनाती निकल गयी। सोमेश्वर का हृदय हाहाकार कर उठा।

उसके बाद बात का अंत कहां ? नयी बहू के पैरों की दोनों कानी उंगलियां लम्बी-कुलच्छनी। किसी ने हंसी उड़ायी, किसी ने ताना दिया।

फुस-फास-फुस-फास कर इस कान से उस कान होते बात को फैलते देर नहीं लगी। जो लोग इस विषय पर पहले ध्यान दिये बगैर चले गये थे—उत्सुकतावश वे फिर नजदीक आने लगे।

बेचारी नयी बहू कभी पीली पड़ती कभी लाल हो जाती, ओढ़नी लड़कियों ने खींचतान कर कुछ नीची कर दी, इस बार फिर आकर वह ओढ़नी कमर तक पहुंच गयी। जरूर बात अब तक पति के कानों में पहुंच चुकी है। पति आखिर क्या सोचता होगा ? वह आदमी कैसे स्वभाव का है, क्या पता। छिछि, वर-पक्ष के कान में यह बात पहले ही डाल देनी चाहिए थी। अगर यही बात इन लोगों का दिल खट्टा कर दे—तो उनके घर आना-जाना बंद हो जाये—हमेशा के लिए बातचीत ही बन्द हो जाये। अगर जेठ, देवर या उसका पति ही उसके मां-बाप या घर के दूसरे लोगों का अपमान करें तो। किस अशुभ क्षण में ईश्वर ने उसे जन्म दिया था। वह बेचारी ओढ़नी के तले अपनी किस्मत को ही धिक्कारने लगी। अनजाने ही बेचारी अपनी उंगलियों को दबाकर खींचती—बिलकुल कछुवे के गले की भांति। ईश्वर अगर इन उंगलियों को गायब कर देता या बराबर कर देता।

अन्दर औरतों की भीड़ बढ़ती गयी। बाहर गांव के लोग बैठकखाने में आकर भर गये थे। विवाह-घर के लोग ठहरे—विवाह जैसा एक बड़ा-सा समारोह हो चुका है

उसके अलावा बहू को भी ले आया है। इनके साथ-साथ एक तामोल(कच्ची सुपारी) खाते जाएं, जरा तम्बाखू पीते जाएं या जरा चाय पीते जाएं, आदि के बहाने भी लोग मौजूद हैं ही। लेकिन सोमेश्वर को कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। लोगों के बीच से निकल पाने पर ही मानो वह बच सकता है। उसे लग रहा था कि कहीं जाकर अकेले बैठी रहे।

कदमी की मां की कही हुई बात ही मानो कान के पास मन-मना रही थी दूसरी कोई भी बात बातचीत उसके कान में नहीं आ पा रही थी।

तो वह यों ठगा गया। इस साल इस गांव की और आस-पास के गांव की जो भी शादियां हुईं—उस सबसे वह जीत गया था। धूम-धाम, आयोजन, खिलाने-पिलाने, किसी में कोई त्रुटि नहीं रही थी। लड़की देखकर भी सबने उसी की सराहना की थी। देखने-सुनने में इस अंचल में सोमेश्वर को ही लड़की अच्छी मिली है। दो-एक प्रौढ़ व्यक्तियों का यह मंतव्य उसके कान में पड़ा था। दूसरी लड़कियों में कोई न कोई नुक्स थी ही। किसी के बाल भद्दे हैं, किसी के देह-अंग बड़े मोटे, किसी के पैर खड़ाऊं जैसे, किसी की आंखें ऐंची, या किसी के शरीर का रंग ही काला। आदि, आदि। ऐसी स्थिति में सोमेश्वर के मन की हालत कैसी हो गयी, वही जानता है। घर के सभी हंसी-मजाक, रंग-तमाशे जैसे फीके हो गये। बात क्या है, सबने अपने अन्तर में बात को समझा था, मगर बाहर वे प्रकट नही कर पा रहे थे।

बहू के घर से जो लोग आये थे, वे ऐसी स्थिति के लिए हर क्षण तैयार ही थे। परन्तु विवाह के कार्यक्रम का पहला हिस्सा अच्छे ढंग से ही निकल गया देख, खुले मन से दूल्हे के घरवालों से बातचीत कर सके थे। पर अचानक दूल्हे के घर वालों के विचारों में परिवर्तन देखकर सबका मन फिर गया। झट विदा लेकर वहां से निकल जा सकें तो बच जायें—बात जानने-समझने वालों का दिल कसमसाने लगा।

स्वागत-सत्कार में कोई त्रुटि नहीं हुई। चाय-जलपान, तम्बाखू-सुपारी आदि बीच-बीच में दिये ही जा रहे थे। गाव के लोग एक-एक कर उठकर चले जाने लगे। सोमेश्वर ने मन की स्थिति को दबाकर खुले मन से बातचीत करने की कितनी कोशिश की—पर उहूं, किसी तरह से भी मन को वह स्वाभाविक नही बना सका।

अन्दर बहू के चारों ओर बैठी औरतें भी चाय-सुपारी धुआंधार उड़ा रही थीं, इस बात की चर्चा सीधे न करने पर भी भला सज्जनता की खातिर ही इतनी बड़ी बात की चर्चा करना कैसे छोड़ दें? गांव की ही भोग की मां ने सुपारी काटते-काटते शुरू किया—क्यों, हरि की बहू के पैर तो खड़ाऊं जैसे हैं, कहा, देखो तो जब से वह घर में घुसी उसी दिन घर दिन-दूना रात-चौगुनी बढ़ता ही गया है।

कुछ ने हां में हां मिलायी। हां-हां, तुमने ठीक कहा है। सभी ईश्वर की सृष्टि हैं। देखने में गंदी भद्दी औरत ही परिवार चलाकर मुट्ठी भर खा-पी रही है।

दूसरी प्रौढ़ औरत ने एक सुपारी को मुंह में भरकर जरा-सी खैनी डालते हुए

कहा—कहते है न सु तिरि फेदेली, सुफल कवली याने-भट्टी कहते हैं जिसे वही औरत हो तो भली, फलों में उत्तम केला-कदली—पाल नाम[1] में दुहराया जाने वाले पद गायन की भांति यह बोल उठी।

कितनी ही औरतों ने उस कहावत को दुहरा दिया। साथ ही छोड़ो यह सब, सब कुछ झूठा है, भाग्य ही सच है। कुलक्खनी-सुलक्खनी सब अपने मन में गढ़ी हुई बात है, आदि मतंव्यों की बौछार होने लगी। और घर में जो एक उमस जैसा भाव फैला था वह भी धीरे-धीरे बदलने लगा। इसी समय मौजादारनी[2] वहां आ पहुंची।

गांव में मौजादारनी से बढ़कर और कोई नहीं है। जैसे-तैसे के यहां वह जाती भी नहीं। लेकिन सोमेश्वर के यहां चढ़ावा-विवाह में वह बराबर आती रही है। बाहर से सोमेश्वर ने पास किसी बच्चे को न पाकर खुद ही दीवार के पास आ कुछ व्यस्तता से उस मंडली को सम्बोधित करते हुए कहा—अजी, हमारी मौजादारनी जी आयी हैं। उन्हें बिठाइये। वहां बहुत-सी औरतें थीं। सोमेश्वर के सामने जो ओढ़नी लिया करती थीं, वे उसकी आवाज सुनते ही अपनी-अपनी ओढ़नी खींचने लगीं। परन्तु जब सोमेश्वर अंदर नहीं आया तो कुछ आधा संभाले ही छोड़ देने को विवश हुईं। वे बातों में जिस तरह डूबी हुई थीं, अचानक ओढ़नी डालना क्या आसान था? बहू ने बेकार ही ओढ़नी पर हाथ डाला। मौजादारनी के लिए अलग से दरी बिछा दी गयी। मंडली के सबसे बड़े ने सौजन्य की दृष्टि से उसे देखा। पान-सुपारी ले, लाल होंठों से मुस्कुरा कर मौजादारनी ने पूछा अरी, कहां है, दुल्हन तो देखती हूं हाथ भर लम्बी ओढ़नी डाले बैठी हुई है? हम तो ओढ़नी देखने के लिए नहीं आयी हैं न?

साथ ही हंसी की गुनगुनाहट फैल गयी। एक ने कहा—री मैया, मौजादारनी मैया आयी है, भला ओढ़नी हटा क्यों नहीं देती?

शर्मिंदा होकर एक नन्हीं लड़की ने तभी जाकर बहू की ओढ़नी को उतार दिया।

इसी बीच भोग की मां ने पान-सुपारी देने के बहाने मौजादारनी के कान में वह बात डाल दी। उसने कानों में क्या कहा, सबने समझ लिया और उसकी प्रतिक्रिया कैसी होती है, जानने हेतु उद्विग्न हो, सभी प्रतीक्षा करती रहीं पर सभी विस्मित हुईं। मौजादारनी ने बात को स्वाभाविक ढंग से ही लिया—किसी तरह की उद्विग्नता नहीं दिखायी।

मौजादारनी ने धीमे स्वर से कहा—तो उससे क्या हो गया? भोग की मां ने तभी फुस-फुसाहट छोड़कर ऊंची आवाज में कहा—हा मैया, हम भी तो वही कह रही हैं, कौन-सी बड़ी बात हो गयी यह? जबकि मौजादारनी बिना विस्मित हुए रह गयी तब तो बात वैसी महत्त्व की है नहीं।

साथ ही किसी के अन्तर में कुछ खटकने या संदेह का भाव था, वह भी साफ हो

1. एक तरह का नाम-गायन।
2. तहसीलदार या पटवारी की पत्नी

गया। घर फिर विवाह का घर-सा हो गया। मौजादारनी अपनी स्वाभाविक गंभीरता को बनाये रखकर भी हंसी-ठिठोली की बातों से सबको हंसाने लगी, परन्तु उंगली वाले उस प्रसंग की कोई चर्चा नहीं की।

बेचारी दुल्हन की छाती पर से मानो किसी ने एक चट्टान उतार ली। उसे लगा मौजादारनी के चरणों में पड़कर रो पड़े वह देवी तुल्य है, दूसरों का सुख-दुख समझती है।

बाहर सोमेश्वर उद्विग्नता से खड़ा था—मौजादारनी क्या कहती है? मौजादारनी की एक बात की कीमत सबसे ज्यादा है। इसलिए साथ ही सोमेश्वर का दिल फिर साफ हो गया।

चाय-पान सुपारी खा-पीकर सबसे विदा ले मौजादारनी जाने को तैयार हुई। उससे मिलने हेतु सोमेश्वर राह के सामने रुका हुआ था।

—मैया, जा रही है?

—हां बेटा, लड़की देख ली।

—जरा-सा खाना-पीना हुआ या नहीं?

—हुआ-हुआ, सब कुछ हुआ।

और? मानो सोमेश्वर की जबान से बात निकल ही नहीं रही थी, जीभ मानो सूख गयी थी। मौजादारनी के साथ-साथ वह भी आगे बढ़ गया। क्या कहकर पूछे भला।

उसने धीमे से जरा खांसा। पता तो चल ही गया है न? हमारी किस्मत? कहते हैं न, घमंडी का मुंह काला।

अपनी किस्मत ही ऐसी है!

—ओ, उस उंगली की बात कहते हो? वह तो कोई बात ही नहीं, लक्ष्मी बहू मिली है। वह तो कोई बात ही नहीं है।

आनन्द से सोमेश्वर का शरीर सनसना उठा।

—किसी की बात पर कान न देना—बढ़िया लड़की मिली है। बात करने के बीच ही अनजाने मौजादारनी का पैर गार के खुर में जमे पानी में पड़ गया—मेखला पर छिटकी पड़ी। सोमेश्वर ने ओह-आह किया। उसने मौजादारनी के पैरों की ओर नजर डाली। बाहर कीचड़-पानी रहने के कारण आमतौर पर सैंडिल जूते पहनती थी, वह पहने बगैर ही आयी थी। मगर—सोमेश्वर स्तब्ध-सा रह गया। मौजादारनी अपनी मेखला को खींच कर अपने जिस पैर को ढंकने की कोशिश कर रही थी उसकी ओर वह अवाक विस्मय से देखता रहा। मौजादारनी के पैर की कानी उंगली भी तो लम्बी थी।

9 निस्संदेह

बसन्त का यह पत्र सम्पूर्ण रूप से अप्रत्याशित था। स्वाती मुझे पत्र लिखने के लिए अरसे से अनुरोध करती रही है। कुछ दिनों से स्वाती का कुछ अजीब आचरण देखा जा रहा है। वह किसी भी बात पर अड़ जाती है, स्वास्थ्य गिर चुका है। इसी कारण मैं उनके यहां जाकर कम से कम एक सप्ताह रहूं, स्वाती और बसन्त दोनों की यही अभिलाषा है। इसके अलावा बसन्त के लिए दिन भी न जाने कैसे विरक्ति जनक हो उठे हैं। एक पिकनिक में जाने का भी इन्तजाम किया है, सिर्फ मेरे पहुंचने की देर है। कब आ रहा हूं सूचित करते ही जीप भेज देंगे।

स्वाती के जरिये ही उसके पति बसन्त से पहले-पहल मेरा परिचय हुआ था, हालांकि उसका कहना था कि उसने मुझे पहले देखा था और कहीं मेरा भाषण भी सुना था। पार्टी के काम से खासकर चुनाव के दिनों कई सभाओं में मुझे भाषण देना पड़ा था, अतः मैंने जवाब दिया था कि उसने सुना होगा। यह स्वाती के विवाह के महीने भर बाद की बात थी। स्वाती और बसन्त दोनों स्वाती के मायके में आये हुए थे। बसन्त फुकन नामी गोल रक्षक, क्रिकेट खिलाड़ी और निशानेबाज शिकारी था। कुल मिलाकर उसमें खिलाड़ी मनोवृत्ति रहने के कारण ही दूसरी बहुत-सी बातों को सरल भाव से लेने की भांति स्वाती के संग विवाह की बात को भी सरल भाव से ही ग्रहण कर सका। पहली बार स्वाती ने अपनी होने वाली शादी को भंग कर दिया था। स्वाती के बारे में बहुत-सी अफवाहें भी निश्चित रूप से उसके कानों में पड़ी हैं। मेरे साथ राजनीति में सम्मिलित होना, मेरे साथ ज्यादा हेल-मेल करना, उसको उपलक्ष्य बना कर ही, हालांकि इन घटनाओं का उद्भव हुआ था। फिर भी स्वाती के बारे में सैकड़े में से निन्यानबे लोगों की पहले से ही बुरी धारणा थी। दूसरी लड़कियों की अपेक्षा स्वाती के अंगों में कुछ विशेषताएं थीं जो असामान्य हैं, सरलता से ही वे हमारे समाज की आंखों में पड़ जाती होंगी। चाहे जो भी हो, अफवाहों पर भले ही कान न दें, एक बार शादी के भंग हो जाने के बावजूद दूसरी बार जब बसन्त खुद उसी लड़की से शादी करने को आगे बढ़ आया था, तो उस सत्साहस की मैंने प्रशंसा की थी, पहली ही बार उसने मेरे साथ इतनी आन्तरिकता से और खुले दिल से व्यवहार करना शुरू किया कि उसकी तुलना में मेरा संकोच ही सन्देहजनक रूप से बढ़ता गया था। मैंने बसन्त की आंखों में नजर डाली थी, उनमें कोई भावान्तर नहीं बिलकुल साफ थीं। ठुड्डी पर नजर डाली, उसमें पौरुषव्यंजक दृढ़ता थी। ये लोग तन्दुरूस्त हैं, दस-पांच लोगों ने कौन-सी अफवाह उड़ायी है, या किसने गुमनाम चिट्ठी लिखी है, ये बातें उनके दिमाग में आसानी से नहीं घुसा करतीं। चाहे जो भी हो स्वाती के

भावी-सुखी जीवन की कल्पना कर उस दिन मैंने चन की सांस ली थी।

समझे न, इन विजन दा के संग लोगों ने मेरी बड़ी बदनामी फैला दी थी। बेड़ों में पर्चियां लगायी थीं, छपे परचे भी निकले थे। अगर ढूंढ़ा जाए तो मेरे ड्रावर में आज भी दो-एक मिल जायेंगी। मुझे जहां तक हो अप्रस्तुत-सा बना कर स्वाती उस दिन पति के सम्मुख बहुत-ज्यादा प्रगल्भ हो उठी थी। परन्तु हजारों लोग भले ही वह सब निकाला करें, विजन दा तो देवता जैसे हैं!

स्वाती का यही एक दोष है कि वह हर बात में सीमा पार कर जाती है। इसी कारण उसके व्यवहार आदि दूसरों की नजरों में आसानी से पड़ जाते हैं। चाहे जिस कारण से हो स्वाती की प्रगल्भता के कारण हमारा वातावरण भी अजीब किस्म का हो उठा था मैंने स्वाती को रोकते हुए शीघ्रता से कहा—उन बातों की भला अब जरूरत ही क्या है, स्वाती, जो बीत गया उसे जाने दो। बसन्त ने उस बात को किस तरीके से लिया था, वह बात उस स्थिति में समझ लेना आसान न था। उसने मेरे समर्थन में सिर्फ गले को साफ कर लिया। सख्त मांसपेशियों वाले व्यक्ति के शरीर में उंगलियों के सिरे से बालों के सिरे तक मानो अपार शक्ति और दृढ़ता की निशानी खिल उठी थी। स्वाती वहां महीने भर थी। छुट्टी खत्म होते ही बसन्त काम में योगदान करने चला गया।

यह लगभग ढाई साल पहले की बात थी। इसके बाद दो-एक बार स्वाती का पत्र मिला था। एक बार बसन्त ने भी दो शब्द लिखे थे। न जाने क्यों स्वाती का इस तरह से पत्र लिखना उसे ज्यादा पसन्द नहीं था। लोगों का मन स्वभाव से ही संदेही होता है। खासकर विवाहित आदमी का मन। बसन्त फुकन भी क्या मानवी दुर्बलताओं के चंगुल से बच पायेगा? खासकर जबकि हमारे नाम पहले हरदम अफवाहें उड़ चुकी हों। इसी कारण मजे में हूं, चिट्ठी मिली, आदि जैसी दो-चार बातों से सौजन्य की रक्षा करते हुए एक कार्ड डाल दिया। समय पर स्वाती के एक कन्यारत्न के जन्म के बारे में भी सूचना मिली थी। कुछ महीने बाद लड़की के मर जाने की खबर भी आयी थी। आज से लगभग छह महीने पहले। इस मरने-जीने के समाचार में कुछ भी नयापन नहीं था। इस कारण सब कुछ दब गया। मैं पार्टी के कामों के जुट पड़ा।

आज फिर ढाई साल बाद यह पत्र मिला है। मेरा शरीर मन व्याप्त अवसाद के लक्षण थे। हाल ही में एक उपचुनाव में अपने दल के एक उम्मीदवार को खड़ाकर हड्डी को पानी करने के बावजूद हम हार गये थे। तभी असली थकावट ने आकर दबा दिया। जैसे भी हो इस आमंत्रण को स्वीकार करने का ही तय किया।

बसन्त नगावे के एक चायबागान का सहायक मैनेजर है। सुनते हैं, कि सरकारी बस से उतरकर उस चायबागान में पहुंचने को तीन-चार मील अंदर जाना पड़ता है। मैंने अपने पहुंचने का समाचार भेजा न था। पैदल चलने की मुझे आदत थी, पार्टी के कामों से दिन में दस-पन्द्रह मील तक पैदल चला हूं। शाम हो चुकने पर बसन्त के बंगले पर पहुंचा। वह तो किसी सहायक मैनेजर का नहीं, किसी उपायुक्त का ही बंगला-सा लगा।

कुछ दूर मैनेजर का बंगला तो मानो कोई राज भवन ही हो। एक चौकीदार के हाथ एक पुर्जा लिखकर बरामदे में खड़े रहकर बाहर की तरफ शाम देखता रहा। ज्यादा हिलने-डुलने की भी हिम्मत नहीं थी। विशाल अलसेसियन जंजीरों में बंधा होने पर भी मानो उस पर दिल विश्वास नहीं कर पा रहा था।

हवा में जले कोयले की गंध थी, दूर कल-घर, पत्ती-घर की लाल टीनों वाली छतों पर शाम की काम-छाया खेल रही थी, मजदूर बस्ती में ढोल, मादल बजने लगे थे, दूर से लाइन चौकीदार की काम जारी की ऊंची हांक गूंज रही थी—चार नम्बर कामे-काम।

बरामदे की स्विच दबाकर मेमसाहब अन्दर आ गयीं। बहुत दिन बाद मुझे देख पाने की खुशी मानो उसके शरीर की हद को तोड़ कर, नदी की छाती पर उतर आयी। पहली बाढ़ के अगले सिरे की भांति निकल आना चाह रही थी। दूसरे ही क्षणों में अपने को संयमित कर वह आगे बढ़ आयी और वहां उतारकर रखे हुए मेरे छोटे कैनवस के थैले को वह खुद उठाकर मुझे सीधे अन्दर ले गयी। यह भी बताया कि उसके दिल में इसकी बू पहले ही आने लगी थी कि मैं इस बार जरूर आने वाला हूं। मैंने साहब के बारे में पूछा, तो बताया कि क्लब गये हैं। मैं दिन भर मोटर की धूल खाते आया था। यात्रा की थकान और भूख दोनों ही थीं। नहा-धोकर स्प्रिंगदार सोफे पर अवश शरीर को बड़े आराम से समर्पित कर दिया। एक साथ ही रेडियो में लता मंगेशकर का स्वर गूंज उठा। तरह-तरह के खाद्य पदार्थ की ट्रे को तिपाई पर रखने का निर्देश बैरे को देकर स्वाती खुद ओवलटीन तैयार करने में जुट गयी।

— मैं तो चाय पीता हूं न···

—आज भले एक कप ओवलटीन ही पी ली तो स्वास्थ्य का कौन-सा बड़ा नुकसान हो जायेगा? स्वाती की वही पहले जैसी स्नेहभरी बात थी।

—एक आदमी को आपके पास बैठकर तो खिलाते रहना पड़ेगा न? ओवलटीन का कप आगे बढ़ाकर कुर्सी खींच, पास बैठकर स्वाती बोली।

—कहो तो विजन दा अपने स्वास्थ का भला यह क्या कर डाला?

दो दिन दाढ़ी न बनाने के कारण जो बाल बढ़ आये थे उनके बीच मैं मुस्कुरा पड़ा।

—बड़ी पुरानी बात है। तुमने पहले ही कहा था?

—उन दिनों तो एक जवाब था भी।

—आज भी है, वही एक ही जवाब नजर रखने वाले का अभाव और एक कप में फिर ओवलटीन घोलकर एक तरह से जबर्दस्ती मेरे कप में डालकर कहा, क्यों, क्या यशोधरा नजर नहीं रख सकती थी? विवाह हुआ क्यों नहीं?

—लिखावट अच्छी न थी।

अचानक जोर से हंस पड़ी स्वाती। अब तक की बातचीत में एक स्वाभाविक बनावटीपन को हम दोनों ने ही स्वीकार कर लिया था। इसलिए हंसी कुछ बेतुकी-सी थी।

पर और कोई चारा न था। उस समय तो मानो हम तीन-चार साल पहले की एक शाम को स्वाती के मायके के बैठक खाने में मेज के दो सिरों पर बैठे हुए थे। पास खड़ी थी स्वाती की मां। स्वाती के हाथ मेरे कागजात की फाइल थी। उस फाइल में पार्टी की पत्रिका के लिए लिखे दो-एक राजनीतिक लेखों की पांडुलिपियां, प्रयास के लिए लिखी एक अधूरी कहानी थी।

—यह सब छपवाया है क्या ? क्या कहीं छपने को भेजा नहीं ?

—मैंने सिर हिलाया नहीं !

—वाह, कहानी इतनी अच्छी लग रही है। इसे पूरा क्यों नहीं कर डालते ?

—दुबारा कापी करने के आलस्य के मारे।

—तो फिर जिसकी लिखावट अच्छी हो उसे देखकर किसी से विवाह कर लीजियेगा। फिलहाल मैं अपनी गंदी लिखावट से ही कापी किये देती हूं।

—मेरी कहानी अगर आंखों से कम देखने वाले किसी सम्पादक की पत्रिका में छप भी जाए तो सिर्फ एक पाठक ही उसे पढ़ेगा। उसके लिए इतना आयोजन न कर पांडुलिपि ही उसे पढ़ने को दे दी जाए तो क्या बुरा है ? ओरिजिनल देखने का गर्व भी रहा, और अधूरे के लिए कल्पना की जगह भी रही।

खान-पान का पर्व इसी बीच खत्म हो गया था। स्वाती के चेहरे की ओर अब जाकर देखने का मौका मिला है। कहां, पत्र में लिखे अनुसार कोई अद्भुत चीज तो खास दिखाई नहीं पड़ी। हालांकि स्वास्थ की अवनति चिन्ताजनक रूप से ही हुई है। उससे मानसिक स्थिति का कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। एक दिन ऐसा हुआ था, स्वाती के साथ राजनीतिक विचारधारा को लेकर दिन-भर बहस की थी। पर्चे बांटे थे, प्रेस की कापी बना दी थी, फिर पार्टी के काम में शरीर न्योछावर भी कर दिया था। मेरे साथ एक-दो सभा-समितियों में भी भाग लिया था। एक दिन एक महिला-सभा में भाषण भी दिया था। कभी-कभी रात को दस ग्यारह बजे तक स्वाती के घर बैठे उससे जाति-भेद, अंतर-जाति विवाह, नारी-स्वतंत्रता, शीत-युद्ध, कोरिया की समस्या आदि के बारे में चर्चा करता, बहस करता।

हमारी बात-चीत में बेकार संकोच की सारी भावनाएं मिट चुकी थीं, और लिखी-पढ़ी लड़की स्वाती को मेरे साथ इस प्रकार मिलने-जुलने में अभिभावकों की तरफ से भी किसी तरह की आपत्ति नहीं दर्शायी गयी थी। स्वाती की तेज जबान और प्रचंड साहस के बारे में कालेज के छात्र-छात्राओं से लेकर घर के अभिभावकों और शहर के दूसरे लोगों में ऐसा कोई भी न था जिसे पता न हो। जिन लोगों को स्वाती के बिलकुल नजदीक आने का मौका मिला था, स्वाती के बारे में उनकी अच्छी धारणा थी, परन्तु ज्यादातर लोग स्वाती के नाम पर नाक-भौं सिकोड़ते थे। हालांकि छिपे-छिपे अकेले मोटर पर सवार होकर सैर करना, कभी अकेले सिनेमा देखकर रिक्शे से घर लौटने आदि बातें सबको सहन न हो पाना स्वाभाविक थीं।

आगे चलकर स्वाती के मां-बाप ने पतवार छोड़ दी। लेकिन उन लोगों ने ऊंची भावना से किया या नाक सिकोड़ कर, उनके बाहरी व्यवहारों से अनुमान लगाना मुश्किल था। कभी-कभी स्वाती की बात-चीत या कार्यकलाप सीमा पार कर जाते-जाते-से लगते। कभी-कभी स्वाती के संस्पर्श से मैं भी तंग आ जाता था। वह कैसी एक अरुचिकर अनुभूति थी, मानो बिलकुल किसी नंपुसक की सन्निधि में रहने जैसी। एक बार मेरे मन में एक ऐसी ही भावना पैदा हुई थी। आगे चलकर उसी ने मेरे भीतर एक ऐसा क्रोध और घृणा उत्पन्न कर मुझे अनजान में स्वाती-विद्वेषी बना डाला जिसे प्रकट नहीं किया जा सकता। हालांकि मैंने बड़ी सावधानी से अपने मन की भावना को छिपाये रखा था, फिर भी स्वाती के सहज प्राण ने न जाने क्या कुछ समझ लिया था। आगे चलकर उसका यह समझ पाना ही मेरे लिए और कष्टप्रद हो उठा। राजनीति में जुटे आदमी के मन की ऐसी स्पर्श कातरता से मैं स्वयं विस्मित हो जाता हूं। पर और कोई चारा नहीं। शायद इसीलिए मेरी तरफ स्वाती के लिए प्यार करने की भावना पनप नहीं पायी। स्वाती के साथ किसी तरह विवाह की बात सोचते ही एक विद्वेष की भावना जग उठती। स्वाती ने समझा, और सुधारने के लिए बीच-बीच में बनावटीपन की शरण ली, मानो मुझे ही खुश करने, मेरे मन को संतुष्ट करने की कोशिश कर रही हो। मेरे लिए यह स्थिति और भी दुस्सह थी। चाहे जो भी हो, स्वाती की यद्यपि मेरे प्रति कमजोरी थी पर मेरी ओर से उसे जरा भी शह नहीं मिली। मैं अनजान बनकर उससे बचता चलता था।

स्वाती ने उठकर रेडियो का वाल्यूम बढ़ा दिया।

—नहीं रहने दो, वहीं रहने दो स्वाती, तुम जानती ही हो न कि मैं उचित से अधिक कुछ भी पसन्द नहीं करता।

वाल्यूम को घटा कर रेडियो के पास खड़ी हो मेरी ओर जरा मुड़कर स्वाती वड़े उदास भाव से हंस दी। मानो मेरे हर शब्द का अलग-अलग अर्थ है और वह अर्थ स्वाती के लिए बड़ा साफ है।

स्वाती की देह-सौष्ठव की मैं सदा प्रशंसा करता आया हूं। उस दिन भी की।

—तो फिर क्या इस असम देश में किसी की लिखावट पसन्द नहीं ही आयेगी? रेडियो का मीटर बदलते हुए स्वाती ने पूछा।

—जो खुद आगे बढ़ आयी थीं, उनमें कोई चार्म नहीं मिला। जो हमेशा के लिए दूर चली गयीं उन्हीं के लिए मन दरदर भटकता रहा। हंस कर जवाब दिया।

—जैसे—रीता, वितता आदि और पास आयी यशोधरा, और कौन? और कौन थी वह? स्वाती की आंखों में वही पुरानी ईर्ष्या, द्वेष, श्लेश मिली हुई वही हंसी थी। तीस-बत्तीस साल की उम्र तक ऐसा रोमांटिक मन बीमारी का लक्षण है, आप इलाज कराइये कहते-कहते उसने रेडियो को तेज कर दिया।

स्वाती की बात में तीखापन था। मन आहत-सा हो गया। स्वाती के और मेरे बीच जाति सम्बन्धी एक छोटी-सी बाधा थी, जो आज के जमाने में बिलकुल नगण्य है। कम-से-

कम मेरे लिए। परन्तु वह लड़की जरूर स्वाती नहीं होनी चाहिए, यह बात भी क्या मुझे स्पष्ट रूप से उसे बता देना उचित था ? अतः असवर्ण विवाह के बारे में मेरे आड़े-तिरछे जवाब से स्वाती नाराज हो उठी थी। मेरे जैसे रक्षित मनोवृत्ति के आदमी का नेता बन जाना धृष्टता है, मुझसे ऐसे जवाब की आशा नहीं की थी, आदि बातों से स्वाती ने अभिमान प्रकट किया था।

—मान लो दो व्यक्तियों में प्यार हो चुका है। मिलन में एक सामाजिक बाधा भी है, इस बारे में आपका क्या विचार है ?

—विवाह होगा ? हालांकि प्यार अगर दोनों ओर से बराबर हो। कुछ कहने जाकर भी स्वाती चुप रह गयी। उसके होंठ कांप रहे थे। हालांकि मैं उस स्थिति का जायका ले रहा था।

गुवाहाटी केन्द्र से फरमाइशी गीत आ रहे थे स्मृतिर बुकुत थे याम मोर (स्मृति की छाती पर रख जायेंगे अपने)—कहते हैं उस गीत की स्वाती ने भी फरमाइश भेजी थी। दोनों तल्लीन होकर गीत सुनने लगे। बीच में एक बार चड़क-सी आवाज होने पर वाल्यूम घटा दिया। बाहर देखा—बादल ! घड़ी देखी, साढ़े आठ। कहां, अब तक भी बसन्त नहीं आया ?

—साहब की बाट जोहने की जरूरत नहीं, चालिए डाइनिंग टेबुल पर बैठें। रेडियो का स्विच बन्द कर स्वाती ने आवाज दी।

—क्सब से आने में क्या देर होती है ?

—क्लब से तो समय पर ही आते हैं, घर पहुंचने में ही देर हो जाती है।

स्वाती के स्वर में क्षोभ, अभिमान और श्लेष मिला था। मेरे भाराक्रान्त मन को न जाने कौन-सी बेचैनी ने और भारी कर डाला। हजार हो, मैं स्वाती का अतिथि हूं, इसलिए किसी प्रकार से मेरे मन को चोट पहुंचाना गृहस्थ का धर्म नहीं है—दूसरे विचार-विवेचन की बात छोड़ भी दें, तो स्वाती की तीखी बातें मुझे कहीं चुभ रही थीं। मगर स्थिति ऐसी प्यारी थी कि स्पष्ट रूप से मुझे बुरा लग रहा है—यह कह देना तो दूर, सामान्य-सा संकेत करना भी असंभव हो गया। अपनी ओर जबर्दस्ती किसी का ध्यान भी आकर्षित कर सकना, मेरे स्वभाव के प्रतिकूल है। दोनों डाइनिंग हाल में बढ़ गये।

मछली, मांस, दही, क्रीम आदि रुचिकर भोजन सामग्री देखकर मैंने बागान में राजभोग कर रही हो—कहकर अपना मंतव्य प्रकट किया।

—देह के सभी भोग मिल जाते हैं—बागान में। एक घूंट पानी पीकर स्वाती ने सहज भाव से उत्तर दिया।

समझ गया, इस बीच बादल जम गये हैं। स्वाती बात-बात में जहर उगल रही थी। स्वाती सुखी नहीं हो सकी है, पर इसका मूल कहां है ?

स्वाती ने सिर्फ हाथ से खाना छुआ भर था। किसलिए इतना कम खाती है, और उसकी तबीयत के बारे में पूछने ही चला था कि उसके पहले ही स्वाती कह उठी—मैं

एक ससपेन्डेड केस हूं, जानते हैं विजन दा ?

मैं स्तब्ध-सा होकर कोई जवाब देता, उसके पहले ही मुस्कराती हंसती-सी स्वाती चीख उठी, चेहरे को देख बीमारी का क्या अंदाजा लगायेंगे ? डरें मत, छूत की कोई बीमारी नहीं हुई, अब तक वैसी हुई नहीं।

उसके गले की हड्डियां उभर आयी थीं। आंखों के चारों ओर मटमैलापन, स्वाती के स्वास्थ्य में काफी गिरावट आ गयी थी। चेहरे को देखकर अनुमान किया जा सकता था, वास्तव में प्राण पिंजरे में छटपटाता चक्कर लगा रहा है।

—स्वाती, तुम्हें क्या हो गया है ?

आगे बढ़ाई हुई प्लेट से जरा-सा मसाला ले मैंने गंभीरता से पूछा—अपने स्वास्थ्य पर तुम भला ध्यान क्यों नहीं देती ?

—केस संदेहजनक है। एक इलायची को दांत से कुतरते हुए स्वाती ने जवाब दिया। विजन दा, मुझसे विवाह किया था जांच के लिए। विज्ञान की एक निर्जीव वस्तु मुझसे ज्यादा विश्वसनीय है, जांच का नतीजा यही है।—बड़ा गंदा देश है हमारा, विजन दा, अपने बनाये जाल में कैद हम मकड़ी हैं। हमारे बहुत-से बाधा-निषेध।

अचानक न जाने कैसी एक अजीब भावना मेरे मन में बिजली-सी चमक जगा गई। मेरा शरीर सिहर उठा। स्वाती के दिमाग में कोई गड़बड़ी तो नहीं हुई ? बसन्त ने जिस अजीब आचरण के बारे में लिखा था—मतलब ?

मगर स्वाती कहती गई, उसकी भाषा ज्यादा आवेगपूर्ण और नाटकीय हो उठी। सबसे ज्यादा कष्ट भोगना किसकी किस्मत में बदा है, विजन दा ? हमारी किस्मत में—हम !

सीमाओं से हमारा जौ-भर इधर-उधर होना कोई भी सहन नहीं करता—कोई भी, को···ई···भी—यहां तक कि जो प्रगतिवादी कहकर गर्व करते हैं, वे भी।

पलंग की एक खूंटी से कुछ टिकी हुई-सी खड़ी थी स्वाती। आवेश से उसके कपाल के सामने पसीने की बूंदें जगमगाने लगी थीं। स्वाती के प्रति मेरे मन बढ़ती हुई विद्वेष भावना मिट गई, उसकी जगह मन में गहरी संवेदना और करुणा उमड़ पड़ी। स्वयं अपराधी-सा अनुभव करने लगा। उसे समझने की कोशिश न कर स्वाती के प्रति इतने घोर अन्याय करता आ रहा हूं। स्वाती के साथ परिचय के दिन से लेकर अब तक के दिनों की साफ तस्वीर अस्पष्ट रूप से आंखों के आगे सनन-से निकल गई।—परन्तु विवाहित जीवन में स्वाती को दुख कहां है, मेरे जैसा एक कुंआरा, जिसे संसार का कोई अता-पता न हो, कैसे समझ पा सकता है ?—लड़की की मौत ने ही क्या उसे ऐसी चोट पहुंचाई है ?

कुछ पास जाकर प्यार-भरे अनुरोध के स्वर से कहा—स्वाती, तुम ज्यादा बातें न करो, सो रहो। मैं ही बसन्त के आने की बाट जोहता रहूंगा।

मुझे जैसी आशंका थी, स्वाती की तरफ से वैसी कोई आपत्ति नहीं हुई। मानो मेरे

आदेश या अनुरोध की रक्षा कर पाने में ही वह कृतार्थ होगी। मैं बाहर के कमरे में जा अपने बिस्तर पर बैठा रहा।

लगभग ग्यारह बजे बसन्त आ पहुंचा। कुत्ते ने उसे देखकर आनन्द सूचक आवाज की। उसकी पीठ पर दो-चार बार थपकी देकर मुझे देखते ही एक प्रकार से बांहों में भर लिया। मेरे आने से उसे खुशी हुई है, इस बात को बेतकल्लुफी से ही प्रकट किया, इसमें सन्देह नहीं। बताया कि क्लब से बाहर बड़े किरानी के यहां जाना पड़ा। सुबह से ही उसकी पत्नी की तबीयत खराब थी। वहींदेर हो गई। साथ ही एक छोटा-मोटा भाषण भी दे डाला। वे बागान में काम करने वाले नीचे के कर्मचारियों के यहां भी जाया करते हैं, संकट-विवाद में उनके समाचार लिया करते हैं, साथ मिलकर बिहू-फाग के त्योहार मनाते हैं, पूजा-उत्सव करते हैं। गोरे साहब इस बात को पसन्द नहीं करते, आदि-आदि। उसके बात करने के बीच ही एक आदमी आकर उसके शरीर पर का कोट उतार ले गया। साथ ही खाने-पीने के बारे में पूछताछ कर सोयी हुई स्वाती के जूड़े पर दो उंगलियों से हल्की चोट करते हुए पूछा—ओल्ड गर्ल, स्लिपिंग? सो रहो, सो रहो। आज इस समय कैसी है तबीयत? हालाकि उसने जवाब चाहा न था। स्वाती को भी नींद नहीं आई थी। बसन्त के साथ बातें करते हुए मैं भी उठ आया था। बसन्त मसहरी खींचकर सोफे पर जा बैठा। एक आदमी आकर उसके जूते खोलने लगा।

मुझे खड़ा देख कहा—यू बेटर स्लीप—आप अब सो रहें। शायद आने में काफी थकावट हुई है। एक कार्ड मेरे नाम डाल देते तो इतनी दूर पैदल नहीं चलना पड़ता। ब्रश पर जरा-सा टूथ-पेस्ट लेने की तैयारी करते हुए कहा—कल काफी समय है। बातें करेंगे, पिकनिक चलेंगे। लेकिन आपको तो सप्ताह भर रहना पड़ेगा। स्वाती कई दिनों से आपके बारे में बहुत कुछ बताती रही है। वह अगर आपको लिखे तो हो सकता है आप न आएं। इसी कारण मुझे लिखने के लिए लेडी रिक्वेस्ट! ओ, क्या किताबें पढ़ना चाहते हैं? वान्ट बुक्स। उसी शेल्फ में देखिए। जानते ही हैं न, चाय बागान में घुसा हुआ हूं। फार फ्राम दि सिविलाइज्ड वर्ल्ड।

उसकी बातों के बीच में जब कभी-कभी मौका मिला, ओ-आ, नहीं-नहीं आदि विभिन्न भावसूचक दो एक शब्द कहता गया। अन्त में सेल्फ से 'मैडम बावेरी' उपन्यास ले सोने चला गया। काफी रात तक नींद नहीं आई। स्वाती और बसन्त को केन्द्र बनाकर तरह-तरह की असंलग्न चिन्ताएं मन पर छा गयीं। कब आंखें लग गयीं, पता नहीं। सुबह तक सोया रहा। बातों के बीच धीरे-धीरे आंखें खुल गयीं। कमरे में लाइट का उजाला फैला था। घर में किसी के पैदल चलने की आवाज आई। सामने खड़ी थी स्वाती—'सुप्रभात।'

—सुप्रभात! मगर क्या इतनी जल्द रात बीत गई?

—उठिये-उठिये, लगभग पच्चीस मील दूर जाना है।

मैं विस्मित हो गया। स्वाती नन्हीं लड़की-सी हंस पड़ी। आज रविवार है न?

पिकनिक जाने की बात थी न ?

मैं उठ बैठा, आंखें मलते हुए कहा—अजीब मुसीबत है।

—कोई मुसीबत नहीं। सबेरे का वर्णन हमेशा किताबों में ही पढ़ते आए हैं न, आज चलकर अपनी आंखों से भी तो देख लें। हाथ-मुंह धो लीजिए, चाय आने वाली है। उ···ठिए न ?

पिछली रात की दुश्चिन्ताएं मिट चुकी थीं। स्वाती की हालत काफी सुधरी-सी देखी। पूरब में पौ फट रही थी रात के बादलों की निशानी आकाश में दिखाई नहीं देती थी। आधे घण्टे में ही हम जीप पर सवार हो गए। मैं, बसन्त, स्वाती और काम करने वाला एक आदमी।

मोटर से जाने पर भी कुछ दूर जंगली पगडंडी से होकर पैदल चलना पड़ेगा। बाबा बागेश्वर का थान है। इसलिए जगह का नाम भी वही है। फारेस्टर के जिम्मे जीप को रखकर हम पैदल चल पड़े। नदी किनारे की रेतीली जमीन पार कर जंगली पगडंडी शुरू हुई। जहां-तहां लोगों की इक्की-दुक्की झोंपड़ियों के सिवा, लोगों की स्थायी बस्ती नहीं थी। हालांकि कहीं-कहीं भैंस की गोठ से लगी ग्वालों की फूस की दो छतों वाली झोंपड़ियां थीं।

बीच-बीच में पिछली रात को निकल गए हाथियों की ताजी लीद और एक जगह खरहे की लीद देखकर लगा, हम मानो पूरे तौर पर दंडकारण्य में ही आ गए हैं। कहते हैं, यह स्थान हाथी, शेर, भालू और तो और गेंडे का भी निवास है। बन्दूक लाना मना है। फिर भी शिकारी चोरी-छिपे शिकार करते ही हैं। बसन्त खुद शिकारी है, इसलिए घोर जंगल का अनुभव उसे है। हालांकि ऐसे जंगल में घुसने का मेरा पहला अनुभव यही है। स्वाती का भी अनुभव वैसा ही है। हालांकि कहते हैं कि एक बार पिकनिक में पहले भी आई थी। कुछ दूर जंगल-जंगल जाकर एक नदी पार करनी पड़ी। पहाड़ी नदी थी। कहने को तो पानी नहीं के बराबर था, फिर भी जूते खोलने पड़े। नदी पार करने के साथ-साथ यह तो कोई दूसरा ही देश है। जादू का देश। वन-कुंवरी कहीं रहती हो तो उसे वहीं रहना चाहिए। बीच-बीच में एक-एक फैली-सी जगह, चारों ओर से तरह-तरह के पेड़-पौधों से घिरी। वन-कुंवर का शरीर मानो लहलही घास, दूब और एक खास किस्म की लाल पत्तियों वाला वन हो। 'ओ मेरी मैया' कहती हुई स्वाती वहां लेटने का लालच दबा न सकी।

भारवाहक पीछे पड़ गया था। इसी से हम तीनों बैठ गये। बसन्त ने एक मिक्सर जलायी। स्वाती कुछ घास चबाती हुई बोली—विजन दा, आज के दिन के लिए भला आप कवि क्यों नहीं बने ?

बसन्त गम्भीर हो गया। गला साफ कर मानो मन ही मन कहा—जोंक लगने की जगह लगाने के लिए क्या कुछ लाया नहीं जा सका है ?

स्वाती उछलकर खड़ी हो आतंकित आंखों से अपने कपड़े-लत्ते देखने लगी। हम

आग बढ़ चले। चारों ओर के पेड़ जो बहुत ऊंचे थे और तरह-तरह की जंगली लताओं ने उन्हें ऐसे घेरे रखा था जिससे प्रकाश अन्दर न आ सके। नये पत्तों में, विविध रंगों के गुच्छों में, जंगली फूलों में होली की आग मानो अभी-अभी धधक उठी हो। क़रीब हमारे सामने ही एक पर्वत शुरू हो गया था।

मानो किसी नये शिक्षार्थी के चित्र में हरे रंग के गुच्छे लग गए, बीच-बीच में लाल-काले केले के पत्तों जैसे रंगों की छिटकी पड़ी हैं। अनन्य यौवना प्रकृति। भरी जवानी के तीखे रंग उस पर अभी नहीं चढ़े थे। उसकी जगह स्निग्ध, शीतल केले के पत्ते जैसे रंगों की एक चमकीली आभा खिली हुई थी। बिलकुल किसी केले के पत्ते पर पड़ी किसी नव-जात शिशु के कोमल मुखमंडल की सरल, दैवी ज्योति। जंगल के भीतर से तरह-तरह की जंगली चिड़ियों की बोलियां पर्वतों की घाटियों पर प्रतिध्वनित हो रही थीं।

स्वाती की ओर देखा, अद्भुत, स्वाती की आंखों की पलकें, सिर के बाल, शरीर के हर अंग-प्रत्यंग मानो चारों ओर से व्याकुल भाव से चूस लेना चाहते हैं—जैसे मधुमक्खी फूलों के रस चूस लिया करती है। आंखों की दृष्टि सपनीली, मुखमंडल पर प्रकृति की श्यामल स्निग्धता का प्रतिबिम्ब मानो किसी नवजात शिशु का सौम्य मुख हो। तभी स्वाती के पहनावे पर मेरा ध्यान खिंचा। हल्के मक्खन रंग के जार्जेट की मेखला चादर। गाढ़े लाल रंग की महीन जरी की किनारी। चादर के सिरे पर वही गाढ़े लाल रंग के छह 'पालू'। मेखला की किनारी पर भी उसी रंग की जरी का काम। घने चाकलेट रंग की साटिन की कसी हुई ब्लाउज। पैरों में लाल सैंडल। बसन्त का रंग लेने हेतु स्वयं प्रकृति ही स्वाती बन गई थी।

और जरा आगे बढ़ते ही देखा—वहां आदमी थे, बहुत-से आदमी।

दूर-पास के अनेक गांवों से वनभोज के लिए इन दिनों लोग आया करते हैं। बच्चे, औरतें, युवक-युवती, प्रौढ़-बूढ़े लोगों समेत एक-एक गांव ही उमड़ आता है। पिछली रात को ये लोग यहां थे, अब लौट रहे हैं।

किस हिम्मत से भला यहां लोग रात को रहा करते हैं। हाथी, शेर के बीच। गले में टंगे ढोल को बीच-बीच में बजाते मंडली के आगे-आगे चले आ रहे एक नौजवान से पूछने को लाचार हो गया। जवाब मिला—बाबा बागेश्वर हैं न? पास के एक बूढ़े ने संशय की दृष्टि से मुझे देखा। कहते हैं, उस तरह से नाम नहीं लिया जाता। 'हाथी-बापू' 'बनराज' इस तरह से पुकारना चाहिए।

पर्वत के मुख्य टीले के तले चट्टानों से घिरी एक खोह थी। वहां तक उतर जाने की सीढ़ियां बनी हुई थीं। अन्दर ज्यादा फैली हुई थीं। झिर-झिर करता पानी का एक स्रोत भी नीचे बहता जा रहा था। नीचे की खोह में शिव का गुप्त निवास है। यात्री यहां फूल, बेल-पत्र, पैसे आदि चढ़ाया करते हैं।

हमारी मंडली का वह आदमी भार की चीजें निकालकर चाय के इन्तजाम में जुट गया। बसन्त टीले पर चढ़ने हेतु आगे बढ़ गया। स्वाती एक चट्टान पर बैठ गयी—थकी

आलस-भरी सपनीली नजरों से वह खोह की ओर देखती रह गयी। मैं खड़ा होकर हर चीज को गहराई से देखने लगा। मानो कहीं से कुछ एक रहस्य प्रकट हो जाएगा। जिसका हल मेरा अन्तर ढूंढ रहा है अनजाने ही।

स्वाती ! स्वाती मेरे सामने बैठी हुई है, हालांकि वह अब स्वाती फुकन है। मगर स्वाती खाओण्ड भी हो सकती थी।

—जो आपको चाहते हुए आगे बढ़ आई, उसके प्रति कोई आकर्षण नहीं, क्यों ? और जो दूर चली गयी, उसी के लिए क्यों दर-दर भटक रहे हैं ? जैसे विनता-रीता आदि। लगा, मेरे चारों ओर का वातावरण ही कह उठा हो, खोह की ओर देखती हुई स्वाती वह बात कह गयी, आकर्षण नहीं, इसका मतलब घिन करते हैं ?

—स्वाती ! इस बार मै ज्यादा सजग हो उठा, कहा, स्वाती ! तुम मेरी बात का ऐसा मतलब निकालती हो ?

इस बार भी मेरी बात पर स्वाती ने ध्यान नहीं दिया। पहले जैसी हालत में, पहले के लहजे में कहती गई, जानते हैं, रीता-विनता आदि की कानी उंगली के भी बराबर आप नहीं हैं ?

—स्वाती ! आवेश के मारे आवाज अटक-अटककर निकली। घायल अभिमान प्रकट होने का कोई मार्ग न पाकर अन्दर ही उमड़ उठा। इस क्षण मेरे चारों ओर की हर चीज मेरे लिए अर्थहीन हो गई। फागुन की प्रकृति-निस्तेज, पीली जड़ प्राणहीन हो गई। क्या करूं, कुछ भी तय न कर पाया। कहा—तुम्हारा मन अब भी पवित्र नहीं हुआ।

—यानी आपके विचार से मैं अब भी सती नहीं, आप यही सार्टिफिकेट दे रहे हैं, विजन दा ? इस बार स्वाती ने सिर उठाकर देखा। उसकी आंखों की कोर में ईर्ष्या-घृणा श्लेष मिली एक तीखी हंसी थी।

स्वाती के प्रति पहले के घृणा, विद्वेष फिर लौट आए। तुम मुझे अपमानित करने को बुला लायी थीं ? मैं तुम्हें माफ नहीं कर सकता। कुछ अधीर होकर मैं कह उठा।

—माफ ? एक तरह की अजीब मुख-मुद्रा बनाकर स्वाती ने शब्द का उच्चारण किया।

आवाज बदलकर स्वाती के और कुछ नजदीक आकर विनय के स्वर में कहा—स्वाती, भला उन बातों की अब और जरूरत ही कहां है ? अतीत को जाने दो !

इस बीच स्वाती खड़ी हो गई थी। चाय तैयार थी। बसन्त भी ऊपर से उतरकर आ रहा था। चाय के पास आगे बढ़ जाते हुए स्वाती अपने आंचल को शरीर पर तेजी से फेंककर कहती गई—मगर अतीत क्या छोड़ने वाला है ? आपको खोकर मैं जरा भी दुखी नहीं। पर अतीत को नहीं खो पायी, इसी कारण तिल-तिल जल रही हूं।

नैसर्गिक सौंदर्य के बारे में दो-चार बातों के बीच चाय पी गई। इसके बाद भोजन का आयोजन। बसन्त ने फोल्डिंग जेबी कैमरे से दो-चार तस्वीरें लीं। सूखी लकड़ी और ब्यूटी स्पाट की खोज में बसन्त उस आदमी को साथ ले जंगल में घुस पड़ा। इसी बीच

हमारे जैसे नये-नये यात्रियों की मंडलियां आकर अलग-अलग जगहों में चाय-पानी, भोजन आदि की तैयारी में लग गई थीं। स्वाती उठकर फिर से पहले की चट्टान पर जा बैठी।

दूसरी औरतें प्रणाम करने हेतु उस खोह में घुसी थीं। कुछ मजाक के स्वर में स्वाती से पूछा—बागेश्वर बाबा को प्रणाम नहीं करोगी। बेलपत्र और तांबे का पैसा लायी हो या नहीं ?

मुझे चक्कर में डालते हुए स्वाती ने रूमाल से पैसे, बेलपत्र निकाले। मैंने जैसे उसे याद दिला दी हो। उन्हें पानी में भिगो, एक पत्ते से बांधकर वह दूसरी औरतों के साथ उस खोह में उतर गई।

स्वाती ऐसी गृहलक्ष्मी बन गई है, मेरी धारणा ही नहीं थी।

कुछ देर बाद नजदीक के जंगल में पैरों की आवाज सुनकर हम लोग उसी ओर देखते रहे। बसन्त और उसके आगे-आगे चला आ रहा था वह साथ का आदमी, पीठ पर लकड़ियों का बोझ और होंठों पर हंसी का। पीछे-पीछे बसन्त, उसकी गोद में—मैं विस्मय से चीख पड़ा—एक नन्हा-सा हिरण-शावक। स्वाती भी नन्हीं बच्ची की भांति लपक पड़ी। मर्द-औरत, दूसरे लोगों ने भी घेर लिया। स्वाती ने बसन्त की गोद से हिरण-शावक को बड़ी कोमलता से अपनी गोद में ले लिया। कहां मिला, कैसे मिला, मां कहां गई आदि तरह-तरह के प्रश्नों ने बसन्त को घेर लिया। एक फैलावदार जगह में एक पेड़ के तले छाया में सोया हुआ मिला। उसके साथ मां नहीं थी। उसके बाद फिर, सबमें विचार-चिन्तन होने लगा। हिरण-शावक बहुत ही कमजोर था, शायद दो दिनों से मां का दूध नहीं मिला था, इस सिद्धांत पर लोग पहुंचे कि या तो मां को किसी शिकारी ने चोरी-छिपे मार डाला है या किसी शेर ने खा डाला है, या कल यहां लोगों के आने के कारण डरकर मां बच्चे को छोड़ भाग गई है।

इसी बीच स्वाती डिब्बे से कुछ 'कानडेन्स मिल्क' घोलकर बच्चे के मुंह में डालने लगी थी। उसके जिन्दा रहने की आशा कम थी, मगर स्वाती मानो डरी हुई थी। अपना खून देकर भी उसे बचाएगी। वह बच्चा इतना कमजोर था कि सिर जिधर कर दिया जाता, उसी ओर पड़ा रहता। हालांकि हंसी-मजाक के बीच ही भोजन समाप्त हुआ। लेकिन स्वाती ने खाने के समय भी बच्चे को अपनी गोद से नहीं उतारा। बसन्त ने बच्चे सहित स्वाती की और दो तस्वीरें लीं।

लौटते समय उस बच्चे को लेकर मुसीबत हुई। उसकी आयु ज्यादा से ज्यादा आधे घण्टे की थी। उस बच्चे के मरने तक की बाट जोहते हुए वह आधा घण्टा समय यहां बिता भी नहीं सकते थे। क्योंकि आकाश के कोने में बादल घिर आये थे। दूसरी ओर स्वाती भी उसे छोड़ना नहीं चाहती थी, यहां तक कि हममें से किसी को लेने देना भी नहीं चाहती थी। लाचार पहले जैसे ही जंगली पगडंडी से होकर आगे बढ़े। फारेस्टर के नजदीक पहुंचते ही वह बच्चा मर गया। फिर भी स्वाती उसे साथ ले जाने हेतु डटी

थी। काफी समझाने-बुझाने के बाद बसन्त एक प्रकार से बल लगाकर ही हिरण के बच्चे को ले गया और उसे भारवाहक से दूर फेंकवा दिया। फारेस्टर के घर के लोग और दो-चार लड़के-लड़कियां वहां आ गये थे। इसी कारण स्वाती को अपनी गम्भीरता बनाये रखनी पड़ी। परन्तु उसके मन में जो भाव तिर उठा था कम से कम वह मेरी आंखों से छिपा न रहा। शायद मैं कभी भूल भी नहीं पाऊंगा। बसन्त के चेहरे की ओर नजर डाली। अस्वाभाविक गम्भीरता से एक सिगरेट जलाकर वह गाड़ी स्टार्ट कर रहा था। आमतौर पर बसन्त जैसे लोगों के चेहरे की ओर देखकर उसके मन की स्थिति के बारे में जाना नहीं जा सकता।

बागान में पहुंचते-पहुंचते छह बज गए। मौसम की स्थिति बिगड़ती जा रही थी, सब लोग समूची राह में बड़ी जरूरत पर दो-एक बार हां-हूं करने के अलावा अपने-अपने में तल्लीन थे। उस जानवर की घटना ने हम सबके मन को गहराई से छू लिया था—हमारे साथ के कालू को भी।

घर पहुंचकर स्वाती बीमार हो गई। दो-तीन बार उल्टी हुई। उसका सिर चकरा रहा था। सुना कि बीच-बीच में ऐसा हुआ करता है। आवश्यक व्यवस्था करने के बाद उसे सुला दिया गया।

मेरे बिस्तर के पास एक कुर्सी पर बैठ बसन्त एक के बाद एक सिगरेट पीकर खत्म करने लगा। घड़ी में ग्यारह बजा, पर उठने का नाम नहीं। मुझे नींद नहीं आ रही थी, परन्तु बात करने या किसी तरह अपने को उलझाए रखने की जरा भी इच्छा नहीं हो रही थी। परन्तु सज्जनता की खातिर वह बात कही नहीं जा सकती थी।

अचानक बसन्त कुर्सी से उठ पड़ा। घर लौटते समय गम्भीरता पर मेरी नजर पड़ी थी, चेहरे पर वही गम्भीरता। कमरे में उसने दो बार चक्कर लगाए। खिड़की के पास जाकर बल्टू को एक बार हिला दिया। दूसरी बार खिड़की खोलने के साथ ही हर-हराती हवा अन्दर घुस पड़ी। अन्दर हवा की तेजी से उथल-पुथल मच गई। उसने तुरन्त खिड़की बन्द कर दी। हम दोनों जैसे एक ही साथ कह उठे—आंधी।

इस बार बसन्त आकर मेरे पास बैठ गया। दोनों हाथों से सिर को पकड़े कुछ समय बंद खिड़की से होकर बाहर झांकने की मानो बड़ी कोशिश कर रहा था—लड़खड़ाते स्वर में कह उठा—

—समझे न खाओण्ड, उस रात को भी इसी तरह आंधी तूफान, बारिश हो रही थी। मेरा शरीर गनगना उठा। मसहरी हटा दी। बसन्त क्या ज्यादा पी गया है? कहां, उसकी तो कोई निशानी नहीं है। तो फिर क्या यह उसकी मानसिक अस्थिरता है? धीरे से उसके कंधे पर हाथ रखकर पुकारा—फुकन! बसन्त जैसे लोग कभी आंसू बहाकर नहीं रोते, और रोना चाहिए भी नहीं।

—फुकन, आप लोगों की व्यक्तिगत बातों में हस्तक्षेप करने का मेरा अधिकार नहीं है। मगर लगता है, आप को कुछ कहना है?

बसन्त मानो अचानक अपने बारे में सजग हो उठा, किसी दुर्बल क्षण में वह मानो अपने को पकड़ा देने ही वाला था। झट खड़ा होकर कहा—ओ, आइ एम सारी, आपको कष्ट दे रहा हूं। गुडनाइट।

धप्-धप् करते हुए इधर-उधर सहारा लेकर दो कदम चलने के बाद वह धप्प् से—कुर्सी पर बैठ गया।

उस समय बाहर आंधी की हरहराहट बढ़ती जा रही थी। लगता था, एक-एक झटके से यह विशाल बंगला गेंद की तरह ऊपर उछल पड़ेगा। पेड़ों के डाल-पत्तों से सायरन की भांति विकट, करुण, मर्मबेधी लम्बी चीखें निकलकर दूर विलीन होती जा रही थीं। मानो मतवाली बावली कोई नारी बड़े ही करुण भाव से बुक्का फाड़ कर रोती-चीखती, बन-जंगल, खेत-पहाड़, नदी के किनारे-किनारे तेजी से दौड़ती जा रही है—अपने मरे बच्चे के श्मशाम की ओर।

मैं बिस्तर पर से उठ पड़ा। बसन्त का ललाट पसीने से भीग-सा गया था। उसका चेहरा गंभीर होकर लाल हो उठा था। पास जाकर उसके बालों को सहलाते हुए खड़े रहने के अलावा उससे कहने लायक बात मुझे नहीं मिली।

—खाओण्ड, मैंने पहले सोचा न था, बीनू बीमार थी। हल्की-सी बीमारी। ऐसी ही रात थी। आंधी-तूफान, बारिश। सोचता, सवेरे-सवेरे डॉक्टर को बुलाने पर भी चलेगा।···बसन्त का गला भर आया। गला साफ कर अपने शरीर को हिलाकर उसने एक सिगरेट जला ली।

मैं पेड़ के ठूंठ जैसा खड़ा रहा। बसन्त के हाथ की सिगरेट जलकर खत्म हो गयी।

उसकी सांसें तेज हो गयी थीं। कुछ क्षण अपने को संयमित कर फिर कहता गया—यह सोचा, कहती है—मैंने ही नेगलेक्ट किया था—क्या मैं अपराधी हूं?

कहीं बड़ा पेड़ गिरने का जोरदार धमाका हुआ। हड़-हड़-मड़-मड़ तोड़-मरोड़ उड़ा ले जाने की आवाजों का पार न था। बिजली इस बीच बंद हो गयी थी। आने वाली आंधी का आभास पाकर एक लालटेन जला ली गयी थी। उसकी मद्धिम रोशनी में बंद मकान के भीतरी कमरे में हम दो आदमी जाग रहे थे।

और कुछ समय संदेह, आशंका, क्या होगा—न होगा, इसी भाव के आवेश में बीत गया।

दरवाजे में खट की एक अस्वाभाविक आवाज ने मेरा ध्यान खींचा। बसन्त के सोने के कमरे का दरवाजा अधखुला था। लगा, पर्दे को मानो कोई अंदर से हिला दे रहा है। मगर नहीं, पर्दे को हटाकर बड़े धीरे कदम बढ़ाते वह कौन चला आ रहा है, मैंने विस्मय से आंखें रगड़ लीं। नहीं, देखने में गलती नहीं थी—स्वाती!

—स्वाती! दबी आवाज से मैं चीख पड़ा। बायें हाथ से टटोलकर बसन्त के बाल पकड़, जोर से एक बार खींचा। इसी बीच बसन्त घबड़ाता हुआ खड़ा हो गया और मेरे मुंह पर धीरे से उंगलिया रखकर बात न करने का इशारा किया।

उस समय मेरी आंखें भय और विस्मय से खुली रह गयी थीं। स्वाती के चलने की भंगिमा अजीब थी। बायां हाथ हौले से छाती पर आड़े ऐसे रखा था, मानो किसी चीज को बड़े प्यार से लिये आ रही हो। दायें हाथ की उंगलियां ललाट के अगले हिस्से से लगी हुई थीं। आंखें बहुत फैली हुई, मगर ज्योतिहीन, निष्प्रभ थीं।

इसी बीच बसन्त अपनी चप्पल उतारकर नंगे पैर उंगलियां दबाये हुए आगे बढ़ रहा था। स्वाती भी बिलकुल हमारी ओर बढ़ी आ रही थी। बसन्त ने हौले से स्वाती को बांहों में भर लिया। अपनी ठुड्डी उसके बिखरे बालों पर रख, दायें हाथ से उसके गाल, मुंह और हाथ धीरे-धीरे सहलाने लगा।

इसके बाद बड़ी कोमल; प्यार भरी आवाज में पुकारा, स्वाती, स्वाती ! यह देखो, यह मैं हूं, तुम्हारा स्वामी, और यह देखो, खाओण्ड हैं, मेरे मित्र तुम्हारे, विजन दा !

मैं एक हाथ से लालटेन उठाकर दूसरे हाथ से स्वाती की उंगलियां रगड़ने लगा। मेरे स्पर्श से स्वाती का समूचा शरीर मानो रोमांचित हो उठा। पहली बार के लिए आंखें ऊपर उठीं। इसके बाद फिर आंखें मूंदकर बसन्त के कंधे पर सिर डाल दिया। बसन्त एक-दो कदम पैदल चलकर स्वाती को अंदर ले गया। मैं उनके नजदीक लालटेन ले आगे बढ़ा। बिस्तर पर सुला देने के साथ-साथ स्वाती आंखें खोलकर करुण भाव से बसन्त को देखती रही। आंखों को फाड़कर मानो पानी की धाराएं बह चली थीं। बसन्त सिर को जरा झुकाकर स्वाती के गले को बांहों में भरकर उसकी ओर देखता रहा। कैसी अजीब बात थी—बसन्त की आंखों में भी पहली बार आंसू छलक आये थे। यह दृश्य असहनीय हो उठा। पास की छोटी चौकी पर ही हताश होकर बैठ गया।

—स्वाती, मेरी जान ! बसन्त की आवाज बोझिल थी, बीनू के लिए क्या मेरा मन रोता नहीं ?—तुम मुझ पर बेकार शक करती हो, मैंने तुम पर तो कभी शक नहीं किया। तुमने मुझे गलत समझा है। स्वाती मानो सिसक उठी। एक-एक सिसकी से सिर्फ देह ही नहीं, समूचा बिस्तर कांप उठता था। एक-एक लम्बी आह से मानो छाती की पसलियां चूर-चूर हो रही थीं।

आधे घंटे की परिचर्या के बाद स्वाती को नींद आ गयी। बसन्त मसहरी गिराकर निकल आया और मेरे समीप अपराधी की तरह खड़े होकर बोला—भाई, आपको तकलीफ दे रहा हूं। माफ करना।

किसलिए कह नहीं सकता, मैं जरा आवेश में आ गया था। क्षण भर के लिए। इसके बाद पूछा—पहले भी क्या ऐसा हुआ था ?

—एक बार—तभी से ऐसी रात में मुझे बड़ा डर लगता है। मैं खड़ा हो अपने कमरे में चल पड़ा। बसन्त लालटेन दिखाता जरा आगे बढ़ आया।

—सोचती है—मैं शक करता हूं।—बसन्त की आवाज में तब भी अपराधी-सी जड़ता थी।

घड़ी में तब दो बज रहा था। आंधी इसी बीच रुक चुकी थी। हरहराहट की

आवाज भी धीरे-धीरे मिट चुकी थी। बीच-बीच में पेड़ के पत्तों की झर-झराहट की आवाज से छुटपुट हवाओं के झोंके आ रहे थे । जर्जर पेड़-पौधे मानो रह-रहकर आहें भर रहे थे। अनजान में ही मेरे मुंह से एक लम्बी सांस निकल गयी।

सुबह नींद खुलने पर ही समझ सका कि मुझे नींद आ गयी थी। सुबह की तेज उज्ज्वल, सुनहली किरणें मानों मेरी पलकों को हौले-हौले उंगलियों से सहलाती हुई पुकार उठीं —उठिये विजन दा—दिन काफी चढ़ आया है।

सचमुच स्वाती का स्वर था ? खिड़की खोल देने के साथ ही स्वाती ने मुरझायी हंसी हंस दी। मेरी खिड़की के सम्मुख आंधी की निर्ममता से जर्जर संसार था। सामने के 'अप्रैल-फ्लावर' की डालियों-पत्तियों को आंधी की निर्ममता ने कुचल डाला था। कहीं से टूटकर बाग में आ गिरी आम की डाली से पॉपी, क्रिसेनथिमम, कर्नेसन, स्वीटपी के वृत्ताकार परिवार का नामोनिशान मिटा दिया था। माली, जमादारिन सभी बाग की सफाई में जुट गये थे।

मैं बाहर निकल आया। दूर की मजदूर-बस्ती के केले के पौधों की दुर्गति नजर आयी, घुने-फटे पत्तों वाले पेड़ जर्जर मूर्ति बने खड़े थे।

'लिली आफ दि वैली' की कतारों के पास स्वाती खड़ी थी। इतनी आंधी के बावजूद लिली का एक फूल खिला हुआ भा। मैं स्वाती के पास आ गया। स्वाती के कपड़ों से अब भी लिली आफ दि वैली के सेंट की मधुर सुवास आ रही थी। लिली के उस फूल को हौले से पकड़ स्वाती एक कोमल, करुण मुरझायी हंसी हंस पड़ी। पिछले दिन की घटना स्वाती को कुछ याद है, या नहीं, कुछ भी अनुमान नहीं लगा सका। कुछ पूछने जा रहा था, उसके पहले ही स्वाती कह उठी—एक संकट भरी रात निकल गयी, विजन दा।

मैंने सिर हिलाया। फिर एक बार चारों ओर नजर डाली। दूर के केले के पौधे, बागान के बगेन बिलिया ई-जी-हिल, गुलाब के पौधे, अप्रैल-फ्लावर के चिथड़े हुए पत्ते, सभी मानो अंगड़ाइयां लेकर उठ रहे थे।

बसन्त जल्दी उठकर दफ्तर चला गया था और कुछ ही देर में लौटने वाला था। बागान में कुछ समय घूमकर चाय के समय हम दोनों हाथ-मुंह धोकर चाय की मेज पर बैठ गये।

चाय की चुसकी लेते हुए स्वाती ने कहना शुरू किया—मनुष्य की अपेक्षा विज्ञान की एक निर्जीव वस्तु पर ही ज्यादा विश्वास रखा था, वही आपके मित्र की गलती थी।

—तो बीनू ने तुम दोनों के बीच शक पैदा कर दिया था ?

—हूं—उसका जन्म—आपके मित्र के दिल में···।

एक केक को दांतों से काटती हुई स्वाती कहती गयी।

अचानक एक ही स्वर में स्वाती कह उठी—उस शक का निशाना कौन था, क्या यह भी खुलकर कहना पड़ेगा, विजन दा ?

सरक जाने के कारण चाय मेरे नाक-मुंह से निकल गयी। हाथ के कप से चाय छलक

कर गिरने लगी। स्वाती ने टावल मेरी ओर बढ़ा दिया।

फिर से एक कप चाय मेरी ओर बढ़ाती हुई बोली—उसकी मौत ने दोनों ओर से हमारे संदेह को और गहरा कर दिया।

—तुमने भी···? मेरे इस प्रश्न में पहले की तरह उत्सुकता जरा भी न थी।

—बड़े किरानी के यहां काफी रात बिताकर आया करते थे।···लगातार आया करते थे।

स्वाती मानो निर्लिप्त भाव से बातें कहती जा रही थी। हालांकि हर शब्द को स्पष्ट रूप से उच्चारण करने का प्रयत्न कर रही थी।

मैंने चाय की चुस्की ली।

—पर अब हमारा आकाश साफ हो गया है, बिजन दा!

—खुशी की बात है। स्वाती, मैं भी यही चाहता था, मगर बीनू की याद भुला कैसे पाओगी? बसन्त को इस बारे में भी साफ करने की कोशिश करो।

—बीनू की याद ने ही हमारे उस आकाश को साफ कर दिया है—जिसे उसके जन्म और मरण ने घनघोर घटाओं से घेर रखा था।

मेरा चाय पीना समाप्त हो चुका था। तेजी से खड़े होकर कहा—अब फिर से नयी जिन्दगी शुरू करो। अतीत को भूल जाओ।

स्वाती भी साथ ही खड़ी हो गयी थी। वह कह उठी—आशीर्वाद दें विजन दा, मगर आप तो उठ खड़े हुए?

—जल्द जाने पर ही मोटर पकड़ सकूंगा।

—आप आज ही चले जा रहे हैं? स्वाती के प्रश्न में किसी तरह का अनुरोध न था। समझ गया, स्वाती अतीत को भूल सकी है।

—आज ही मतबल? अभी ही।

—कभी नहीं! आपने सप्ताह भर रहने का 'वर्ड' दिया था मिस्टर खाओण्ड! एक सिगरेट का कश लेते मेरे कन्धे को धीरे से हिलाकर बैठने का संकेत करते हुए बसन्त ने बात पूरी की।

स्वाती बसन्त की ओर देख रही थी, उसकी आंखें आनन्द और पुलक से दमक रही थीं, बसन्त स्वाती की ओर देखता रहा उसकी साफ आंखों में एक सरल हंसी थी।

और मैं उन दोनों की ओर देखता रहा।

(1953)

10 तीसरे दर्जे का मुसाफिर

रेल तब भी नहीं पहुंची थी। सिग्नल दे दिया गया था। नित्य स्टेशन के इस सिरे से उस सिरे तक धीरे-धीरे कदम बढ़ाता हुआ चक्कर लगा रहा था। उसे यह स्टेशन बिलकुल नया-नया-सा लग रहा है। इन सालों में काफी परिवर्तन हो चुका है, उत्तर-पूर्वी कोने पर की वह जगह उन दिनों एक छोटा-सा जंगल थी। अब वह लम्बी-लम्बी मिलिटरी बैरकों से रंग-रंगीली बनी हुई है। उधर मजदूरों के लिए नये बने मकान हैं। उसके आगे एक नया बना हुआ कारखाना, संक्षेप में लड़ाई के इन दो सालों में काफी परिवर्तन हो चुका है।

स्टेशन पर मुसाफिरों की कितनी भीड़ लगी रहती है, टिकट खरीदने के लिए काफी चतुराई बर्तनी होती है।

उसकी इच्छा थी कि किसी से खुलकर दो-चार बातें करे, पर परिचित चेहरा एक भी न था। नये ढंग से परिचय कर बात करना चाहता था लेकिन उसके लिए भी लोग न जाने कैसे-कैसे लगे। हर आदमी मानो अपने को ही लेकर व्यस्त था, किसी को फुरसत नहीं—किसी को समय नहीं, हर आदमी के शरीर पर मटिया जीन का सूट और मुंह में सिगरेट। पैरों में भारी बूट और डबल जुराबें और चेहरे इतने गंभीर थे कि उनसे बातें करने में भी डर लगता था। हर आदमी मानो उसके गंदे खादी के पहनावे पर नजर डालता जा रहा था। बयालीस के आन्दोलन में जेल गया हुआ कांग्रेसी—उसके बारे में बस इतनी-सी कल्पना कर हर आदमी फिर अपने-अपने काम में तल्लीन। कोई बढ़कर उससे बात ही नहीं करता—या उसे जानने की रुचि भी किसी में दिखायी नहीं पड़ी। नित्य को दो साल पहले के उन जोशीले दिनों की याद आयी। गांव-गांव में कैसा अद्भुत जन-जागरण दिखायी पड़ा था, गांव उजाड़ कर लोग जेल गये थे—आन्दोलन में उतर आये थे। और आज सिर्फ दो ही साल में यह कैसा परिवर्तन हो गया है? लोग रुपये के लिए बावले हो उठे हैं, बयालीस के क्रांतिकारी दिन भी मानो स्मृति बनकर रह गये हैं।

दूर रेलगाड़ी का काला-सा सिर दिखायी पड़ा। स्टेशन पर चहल-पहल हो उठी। कुली दूर से ही हैंडिल पकड़े रेलगाड़ी के संग-संग दौड़े आ रहे हैं। अपनी अंडी की चादर को कंधे पर डाल दूसरे हाथ की बगल में कपड़े की पोटली दबाये एक तीसरे दर्जे के डिब्बे की ओर नित्य ने कदम बढ़ाये। अनेक मुसाफिर उतरे। मौका पाकर नित्य ने एक बैंच पर कब्जा कर लिया, और सीधे लेट गया। अगर वैसा न करे तो कोई दूसरा आकर हड़प लेगा। दूसरे सिरे की बेंच पर कुछ हिन्दुस्तानी मर्द-औरतों ने अधिकार कर रखा है। पूरा डिब्बा भूनी मूंगफली के छिलकों, नाशपाती के छिलकों से भरा हुआ था। फिर

भी उसे भला ही लगा। लेटे-लेटे खिड़की से जितनी दूर नजर जाती थी, वह देखता रहा। रेलगाड़ी धीरे-धीरे चल पड़ी।

उसने मन-ही-मन अपने कार्यक्रम पर विचार किया। सीधे घर न जाकर जया के यहां जाना क्या गलत बात होगी—वह सोचने लगा। जेल के आखिरी दो महीने उसे कितनी बेचैनी से बिताने पड़े थे। दो साल की जेल-यंत्रणा ने मानो उन दो महीनों में उसे दबा दिया था। पिछले दो महीनों से जया की कोई चिट्ठी नहीं मिली। शायद इसी कारण वह सीधे अपने स्नेह सने घर को न जाकर, जया के यहां चल पड़ा है। जया की मां ने ही तो कैम्प-जीवन के उन तीन महीनों में उसे मां की तरह स्नेह दिया था।

उसे हंसी आ रही थी। कैम्प से निकलकर जब वह जया के घर बैठा रहता, तभी मां न जाने किस ओर से आकर, उसके दोनों कान पकड़ हिलाती रहती। उसका अपराध क्या है—जानने के लिए वह दंग-सा होकर मुंह बाये देखता रहता। इसके बाद जब मां के हाथ दुखने लगते, तब जाकर उसके लम्बे भाषण से, उसका अपराध क्या रहा है—यह बात पता करनी होती—अरे कहती हूं कि भला नेता बन या देश का काम करने वाला बन, लेकिन क्या ऐसे लोगों को बालों में कंघी भी नहीं करनी चाहिए? अरे, शरीर की हालत तो देखो जरा? दिन-ब-दिन सूखता जा रहा है। ऐसे शरीरों से ही क्या तुम लोग गोरे विदेशियों से देश का उद्धार करोगे?

जया शायद दूर से उसकी दुर्गति देख मुस्कराती रहती। इसके बाद मां के जाते ही दर्पण और कंघी लाकर उससे फुसफुसाती हुई कहती—मिली न एक खुराक कान को? अब ठीक तरह बाल संवार लो, नहीं तो फिर अच्छी दवा दूंगी। मगर वह स्वयं कंघी नहीं उठाता, लाचार जया को ही उसके बाल संवारने पड़ते हैं।

जया 'प्राथमिक' का सचिव थी। घर के बच्चे-बूढ़े हर आदमी में उन दिनों वह कैसा उत्साह था—कैसी व्यग्रता थी।

उस कैम्प में उसके अधीन जिन लड़कों ने प्रशिक्षण लिया था, उनकी याद आयी। कितने निर्भीक—हालांकि कितने सरल थे वे। दो ही दिन में उन लोगों ने उसे अपना लिया।

—उस रात की बात वह भूल नहीं सकता। समूचे असम में 144 धारा लगी थी। भारत की कितनी ही जगहों में गोली-बारी हुई थी, आंसू गैस छोड़े गये थे। वारंट और गिरफ्तारियों की बाढ़ आ गयी थी। उस दिन शिविर का दायित्व एक सहकर्मी पर सौंपकर वह कुछ दूर टहलने निकल गया था। साथ दो स्वयंसेवक थे। लौट आने में कुछ रात हुई। जया के घर के बाहरी दरवाजे तक पहुंचते ही पता चला, समूचे गांव को फौज ने घेर लिया है। शिविर के कितने ही लड़कों को गिरफ्तार कर लिया गया है। दो-चार किसी तरह से बच निकले हैं। शिविर में आग लगा दी है। अपने साथ के लड़कों को इधर-उधर जाने को कह कर वह जया के यहां चला आया।

कमरे में कोई लालटेन न थी। उसने जया-जया कहकर पुकारा तो जया एक ढिबरी

लेकर निकल आयी। ढिबरी को मेज पर रखकर व्यस्तता से उसे लगभग बांहों में पकड़कर वह बोल उठी—आप आये किसलिए? आपके नाम वारंट निकला है। वे आपको पकड़ ले जायेंगे।—वह मानो रो पड़ी।

उसने धीरे से अपने शरीर से उसे अलग करते हुए डांटते हुए कहा—तुम सचिव होकर भी इतनी परेशान हो जाओ तो कैसे चलेगा? हम विद्रोह करेंगे और वे लोग जो जापान के खिलाफ जान की बाजी लगाकर लड़ाई में उतरे हैं, चुप बैठे रहेंगे? जाओ, तुम्हारे पास 'प्राथमिक' के जो कागजात हैं, उन्हें जला डालो या हटा दो।

तभी जया की मां निकल आयी। चाहे जो भी हो औरत ठहरी, उसने पहली बार फौज देखी है। पहले की हंसी-मजाक सब कुछ गायब थी। फुसफुसाती हुई बोली—बेटा, कुछ कागज धान के टोकरों में रख दिये हैं—और कुछ करघे के खंभों में भर दिये हैं। क्या अब भी कुछ डर है, बताओ।

—कोई डर नहीं, जाइये जल्द रसोई-पानी बनाइये। हां, सुन रही हैं न—पहले मेरे जाने का इन्तजाम करें—कम-से-कम घूंट भर चाय···।

—मैं चाय का पानी चढ़ा आ रही हूं, तुम बैठो। कहकर वह चली गयी। जया मेज पर की ढिबरी उठा फिर मेज पर ही रखकर उसके समीप आकर बोली। मैं ईश्वर से विनती कर रही थी, हे प्रभु, भैया न आयें, फौज के आने की खबर पाकर रास्ते से ही लौट जायें।···सुन रही हूं—सच है क्या भैया—कहते हैं कि नगांव, कलियाबर, चतिया की ओर—बड़े अत्याचार कर रहे हैं।

जया की उस समय की स्थिति याद आते ही नित्य को अब भी हंसी आ जाती है। फौज के अत्याचारों की बात सुनी थी—मन में बड़ी आंतकित थी, परन्तु बाहर से उस भाव को छिपा रखा था। अब सचमुच अपने गांव में फौज आयी देख उसके होश-हवास गुम हो गये थे।

—पिताजी कहां गये? पूछने के साथ ही वह अन्दर चला आया। कागजात लेकर वे भोला के यहां चले गये हैं।

दो-चार चम्मच नाश्ता करके खड़ी जया से पूछा—पीछे की ओर से खेत में निकला जा सकता है न?—जा सकेंगे, कहकर जया मन में कुछ सोचकर अंदर चली गयी।

—अरी, गिरफ्तार होकर जेल जाना ही तो एकमात्र उद्देश्य नहीं है—मुझे चाहे जैसे भी हो भागना ही पड़ेगा। कुछ ही देर में बाहर धम्-धम् की आवाज़ सुनायी पड़ी। नाश्ता रखा ही रह गया। झट चाय को निगलकर वह खड़ा हो गया। जया की मां उसे हाथ से अन्दर धकियाकर चाय के कमरे से बाहर निकाल लायी। जया अन्दर से तेजी से निकल आयी—उसके हाथ में एक जोड़ी—रिहा मेखला।···कपड़े उतारिये, इन्हें पहन लीजिये, जाइये। कहती हुई वह मानो उसके शरीर पर गिर-सी पड़ी। वह कपड़े पहन रहा था तभी उसे हाथ से पकड़ के अन्दर के कमरे में धकेल दिया।

वह हटी नहीं। और कुछ समीप आकर आवेश और व्याकुलता मिले स्वर में कहा—

यों—यों कमर में गांठ लगाइये।···नहीं···नहीं···यहां···देखूं-देखूं ··मैं···पहना दूं। कह कर खुद ही पहना दिये।

बाहर से आदेश आया—औरतें निकल जायें, मकान की तलाशी ली जायेगी। वे दोनों पीछे के आंगन में निकल गये। इसके बाद धीरे-धीरे आकर खेत की ओर जाने की पगडंडी के सिरे पर पहुंचे। जया उसके शरीर को पकड़ धकियाते हुए, इसी राह से निकल जायें? कहकर सिसकने लगी। नित्य उसका हाथ पकड़कर 'क्या करे' सोच नहीं पाया। उसे धीरज बंधाने का भी समय न था। उसके सिर को हाथ से सहला कर, 'धीरज रखो, मेरे लिए जरा भी न सोचो।' कहकर उसी राह से उसी वेश में निकल गया।

—उसके बाद का लम्बा इतिहास है···एक जगह खाना खाते समय उसे साथियों सहित गिरफ्तार कर लिया गया।

अचानक नींद से जागे हुए की भांति वह उठ बैठा। अब तक सोया ही था या जगा था या कोई सपना देख रहा था, वह अनुमान ही नहीं कर सका। रेल एक स्टेशन पर पहुंचकर रुक गयी। समय का कोई पता नहीं। वहां तो गार्ड की इच्छा ही सब कुछ है। एक कप चाय पीने के लिए वह उतर गया। कोई जान-पहचान का चेहरा दिख जाये, इस विचार से उसने डिब्बों पर नजर डाली। पहले दर्जे के एक डिब्बे में उसका पुराने दिनों का सहपाठी तपन चौधुरी बैठा हुआ था। बिलकुल साहबी लिबास में। मुंह में एक कीमती सिगरेट थी।

—चौधुरी साहब हैं क्या? चौधुरी कुछ देर तक अर्थहीन दृष्टि से उस दाढ़ी-मूंछ बढ़े भद्दे-से आदमी की ओर देखता रह गया। 'अरे, तू तो मुझे भूल ही चुका है।' देखता हूं।' कहता हुआ नित्य उसके पास-आगे बढ़ आया। चौधुरी पहचान कर चीख-सा पड़ा ओ, नित्य है क्या? देखूं-देखूं, जरा यहां आ तो भला।

नित्य ने टिकट निकाल कर कहा—तीसरे दर्जे का मुसाफिर।

—धत्, तू तो आज भी वही बयालीस वाला आदमी बना हुआ है। चाहे तो बाद को उतर जाना।

लोगों की भीड़ पार कर वह किसी तरह ऊपर चढ़ गया। चौधुरी ने कुछ सिकुड़ कर उसके लिए जगह बनाते हुए कहा—आजकल कोई वर्ग-भेद नहीं रहा है। देख नहीं रहा है—यह पहले दर्जे की हालत? फ्लास्क से दो कप चाय ढालकर उसकी तरफ बढ़ाते हुए कहा—बता तो अपना समाचार। शायद जेल से आ रहा है न?

—अरे तू भी तो काफी बदल चुका है।

एक बार हंसकर उसने कहा—तुम सबने कालेज छोड़ा, मैं बी०ए० में फेल होकर एक पंजाबी ठेकेदार के साथ साझे में ठेकेदारी करने लगा। आजकल खुद कांट्रैक्टर हूं।

—बड़ी अच्छी बात है। अब कहां जा रहा है?

—योरहाट। मिलिटरी कैम्प में काम है। लेकिन तू? तू तो घर न जाकर देखता

हूं कि इस ओर जा रहा है ?

— मैं भी योरहाट जाऊंगा। कुछ काम है।

चौधुरी ने दो मिक्चर निकालकर एक नित्य को दी। चार-पांच बार घिसकर तीली जलायी। नित्य अपनी मिक्चर उसी तीली से जलाना चाहता था। चौधुरी ने जलती तीली को बाहर फेंक दी और दियासलाई उसे थमा दी।

—आजकल कितनी रद्दी सलाई निकली है।

रेल की सीटी बजी नित्य जल्दी-जल्दी उतर जाने को तैयार हुआ।

—अरे चल, इसी पर से चलते हैं।···

नित्य उसकी ओर देखकर सिर्फ हंस पड़ा। वह हंसी मानो कह उठी—तीसरा दर्जा···। बाद को फिर मिलेंगे, कहकर वह उतर गया।

जया का घर कुछ दूर था। राह में उसके अधीन प्रशिक्षण पानेवाला रत्नेश्वर नाम का लड़का मिला। वह एक तरह से नित्य को बांहों में भरकर ही घर ले गया। नहा-धोकर कुछ खाने-पीने के बाद नित्य चटाई पर लेट गया। रत्न ने बात जया और उसके घरवालों की ओर मोड़ दी।

—ओ, उनकी बात ? और न पूछें, रत्न ने कुर्सी पर फैलकर बाहर देखते हुए कहा—वे आजकल बड़े आदमी हैं। नित्य ने करवट बदल उसके चेहरे की ओर देखते हुए कुछ उत्सुकता से पूछा—कैसे ?

—आजकल उनका मेल-मिलाप सिर्फ बड़े लोगों से ही है। मोटर वालों के साथ। उस कैम्प का कान्ट्रेक्ट लिया है। फिर जरा रुक कर कहा—

—काफी रुपया बनाया है।

—हूं, तो बुरा क्या हुआ ? नहीं तो घर का काम कैसे चलता ? नित्य ने फिर करवट बदली।

—लेकिन क्या उसी से घर में 'प्राथमिक' का अध्यक्ष—सचिव बनकर···

—तो क्या 'प्राथमिक' के अध्यक्ष को भूख नहीं लगती ?—उसने हंसते हुए कहा—खिड़की से दूर मकानों पर की गयी सफेदी पर उसकी नजर पड़ी। उस ओर संकेत करते हुए कहा—सफेदी भी की है ?

और बहुत-सी ईंट-लकड़ी जमा कर रखी है—बड़ा घर बनवाने वाले हैं।

जया के घर में पैर रखते ही उसे लगा—सिर्फ बाहर ही नहीं, अन्दर भी बदल चुका है। कुछ देर खड़े रहकर बड़ी खूबसूरती से सजायी तस्वीरों को वह देखता रहा। उनके कैम्पों की सामूहिक फोटो पर उसकी नजर पड़ी। बीच में बैठा हुआ वह नित्य।

मेज पर बढ़िया टेबुल-क्लाथ बिछी थी। दो अमेरिकन गुलदस्ते। कमरे की सजावट में भी एक खास विशेषता थी। मानो किसी अतिथि के स्वागत के लिए हो। शायद वह आने वाला है जानकर ही किया हो ? उसने मन-ही-मन सोचा। पर कैसे, उसने तो खबर नहीं दी थी।

तभी पर्दे की ओट से छिपता-छिपता जया का चेहरा निकलता हुआ दिखाई पड़ा। पर्दे को उठाकर अच्छी तरह देख, पहचान कर वह बाहर निकल आयी। हाथ में बुनाई की सलाइयां और एक शराई-ढंकनी। विस्मय और आनन्द से उसके आंख-मुंह दीप्त हो उठे, पर दूसरे ही क्षण अपने को संयमित कर उसने सहज भाव से पुकारा—अरे, नित्य दादा ? मैं तो पहले पहचान ही नहीं पायी थी। बैठिये, बैठिये। मैं मां को बुलाती हूं। आप अच्छे हैं न ?

कहती हुई वह अन्दर चली गयी। जया की बातों में उसे एक नया लहजा सुनायी पड़ा—आधुनिक।

जया की मां बाहर निकल आयी, पुकारा—अरे, यह तो मुन्नू है। बाहर क्यों रहे—आओ अंदर। वह हंसता हुआ अन्दर चला गया और सिर झुकाकर प्रणाम किया। पर मां ने पहले जैसा नोच-खसोट नहीं किया, इससे उसके मन को न जाने कैसा लगा।

कुछ देर बाद नाश्ते की तरह-तरह की चीजों से भरी एक थाली लिये मां आयी। जया पास ही खड़ी थी। उसकी ओर देखती हुई मां ने कहा—जा तो, जरा बैठकखाने की ओर देख। दो-एक नये टेबुल क्लाथ भी निकालकर लगा दे।

जया चली गयी—नित्य ने थाली का सद्व्यवहार करने के साथ-साथ पूछा यह सब तो बड़ा बढ़िया बना है। किसने बनाया, जया ने ? आजकल तो सुनते हैं घी-चीनी का बड़ा अकाल है कहां से मिला ?

जया की मां हंस पड़ी। अपनी नाक को जरा मलती हुई बोली—ईश्वर की कृपा से हमारे लिए इन चीजों का अकाल नहीं रहा है। तिस पर आज एक मेहमान के आने की बात है। वह पिछली रात से ही यह सब बनाने-करने में जुटी हुई है।

सचमुच, घर में पैर रखते ही उसे वैसा ही लगा था। बात चलने पर उसने पूछा—कहां का मेहमान है आखिर ?

—ये न पूछो ? आगे-पीछे सब पता चल जायेगा। मेहमान ही नहीं तुम सबका आशीर्वाद रहे तो और जरा···। कहकर बात अधूरी छोड़ एक अर्थ भरी हंसी हंस दी। तभी बाहर मोटर की आवाज सुनायी पड़ी। घर भर में एक फुस-फुसाहट फैल गयी। मां अचकचायी हुई निकल गयी, लेकिन वैसे निकल जाना बुरा हुआ सोचकर फिर लौट आयी। उसके कान के पास आकर कहा—मुन्नू, तुम खा लो। वह बट्टे में पान-सुपारी है। शायद बाहर कोई आया है। मैं जरा आ रही हूं।

नित्य के लिए मानो खाने की चीजों में कोई जायका न रहा। वह झट पानी पीकर उठ गया।

उसने वहां तपन चौधरी को पाने की या तपन चौधरी ने उसे पाने की आशा नहीं की थी। परन्तु दोनों ने अपनी-अपनी भावना छिपाने की कोशिश में ऐसा भाव दिखाया, मानो वे बड़े ही विस्मित हुए हों।

अरे तुझे इतना ढूंढा था कल। पर तू मिला नहीं। चल-चल, हमारे कैम्प में। कल

मेरी मोटर जाने वाली है, उसी पर घर पहुंचा जा सकेगा। तपन बोला।

—नहीं-नहीं, मुझे आज ही चले जाना पड़ेगा। दो साल बाद छुटकारा मिला है। अब तक घर का मुंह नहीं देखा।

तभी पास खड़ी मां बोल पड़ी—आज रह जा मुन्नू, अच्छा ही होगा। कल मोटर में बगैर किसी तकलीफ के जा सकेगा।

नित्य ने मुस्कराते हुए तपन की ओर देखा। तपन ने रेल में जो हंसी देखी थी, उसके साथ इसका मेल था। वह दीवार पर टंगी हुई एक तस्वीर की ओर देखता रह गया। जया एक बट्टा लाकर मेज पर रख रही थी, उसमें से जरा-सी सुपारी और कुछ मसाला ले, नित्य बोला—तो अब चलूं।

—क्या जा ही रहे हो?

—हूं! कहकर विदा ले वह आगे बढ़ गया। मां दरवाजे के नजीदक आकर धीमी आवाज में बोली—समय पर खबर देंगे···बगैर आये न रहना···हां···।

11. दैनन्दिन

किताबों की दूकान की मैनेजरी। चाहे जो भी हो, वह भी तो नौकरी ही है ? नौकरी पाने में हरनाथ को क्या कम मुसीबत उठानी पड़ी है ? अपने बारे में हरनाथ की बड़ी ऊंची धारणा थी—वह काफी चालाक, चतुर और बुद्धिमान है। पर उसके बन्धु-बान्धवों, आत्मीय स्वजनों का विचार इससे पूरा उल्टा है। मां से वह प्राय: यही शिकायत सुनता आ रहा है कि वह किसी बात को सिलसिलेवार कहना नहीं जानता। आखिर इन सबसे ऊबकर ही वह निकल आया है।

गुवाहाटी शहर दिनों-दिन घी-दूध खाकर मोटे हुए महाजन की भांति ही फैलता जा रहा है। वह गुवाहाटी शहर में आ गया, जाने कहीं नौकरी मिल ही जाए।

सरकारी दफ्तर में भले ही नौकरी न मिली हो, लेकिन एक सज्जन ने किताबों की एक बड़ी दूकान खोली थी, वहीं उसे काम मिल गया। मैनेजर का काम। मैनेजर का मतलब उसने बहुत-बहुत कुछ समझा था—लेकिन अन्दर घुसने के बाद ही समझ पाया, मैनेजर बस, मैनेजर ही है।

किताब की दूकान के सारे काम उसे ही करने होंगे। हालांकि एक लड़का भी है। पहले उबाहट आती थी, पर मालिक उसे पसन्द आ गया था। नौजवान था, व्यापारिक बुद्धि भी थी।

वह उस दूकान के साथ एक चाय की दूकान भी खोलने वाला था, चाय की एक साफ-सुथरी दूकान भली-भांति चलेगी, हालांकि तब मैनेजर का काम बढ़ जायेगा काम बढ़ने पर वेतन भी बढ़ जायेगा।

पहले पहल गुवाहाटी उसे कैसा अजीब-अजीब-सा लगा था। बगैर किसी योजना के बसा हुआ एक नगर-जहां पानी की सुविधा नहीं, नाले-नालियां बुरी, जहां-तहां कूड़े-करकट का अम्बार, मानो असमीया लोग कितने गंदे हैं, कम-से-कम कोई विदेशी अगर देखे तो पहले-पहल यही समझेगा। फिर भी यह सब कुछ सहन हो गया क्योंकि मेस अच्छी मिल गयी। उसमें चार लड़के थे, जल्द ही घुल-मिल गये।

रत्नेश्वर बरा किसी दफ्तर का किरानी था, महन्त बैंक में काम करता था और जगत मास्टर था।

एक लौटता साढ़े तीन बजे, एक आता चार बजे, और एक आता साढ़े चार बजे। सिर्फ हरनाथ का ही लौटने का निश्चित समय नहीं रहा।

रत्नेश्वर आते-आते सिर को घिसकर बालों को बिखराकर आता। दफ्तरी बही में कोई भूल-चूक की बात दिमाग में आ जाने पर ही वह वैसा रूप धारण करता, वही आगे

चलकर आदत बन गयी है।

महन्त ज्यादातर मिक्चर का कश लेता हुआ आता। कभी बैंक का हिसाब मिला न रहता तो सिर झुकाये सोचता-सा आया करता।

जगत पसीने-पसीने होकर किसी तरह पैरों को खींचते हुए आया करता।

हरनाथ के हाथ में आमतौर पर कोई किताब या समाचार पत्र चाहे कुछ भी रहे, लेकिन मुंह में गीत की गुनगुनाहट जरूर रहती। वह ऊंचे स्वर से कभी नहीं गाता, क्योंकि वह गायक नहीं है।

मेलजोल रहने पर भी उनमें बातें कम ही होती हैं। वैसे समय भी कम रहता। हर आदमी अपनी-अपनी राह चला करता।

इसी तरह यह कुवांरा मेस बिना गुल-गपाड़े के चल रहा था। मगर रसोइयों को लेकर गड़बड़ी शुरू हो गयी। कई रसोइयों के आने-जाने के बाद आखिर एक रसोइया आया। उसके चेहरे पर यह लक्षण साफ झलक रहा था कि वह दो वक्त खाना खाता रहा है।

—अरे, घर कहां है तेरा? उसके सिर से पैर तक नजर डाल रत्नेश्वर ने पूछा।

—उत्तर बांका कटा में जी!

—उत्तर हो या दक्षिण हो, असल में है बांका कटा में। है न? अपने बालों को खींचता दर्पण देखते हुए रत्नेश्वर ने पूछा।

—हां जी! उसने भी निडर उत्तर दिया।

—हमारे पास तो देने को कुछ है नहीं। यहां रह जा। रहने पर हमको ही देना होगा तुझे—हमें खिलाना होगा। हालांकि तुझे वेतन देंगे। वह भी महीने के आखिर में मांगने पर, समझा?

उसके बाद एक के बाद एक भाषण की बौछार होने लगी। साढ़े तीन बजे, चार बजे, साढ़े चार बजे इसी तरह समय के अनुसार।

हरनाथ ने उसे भविष्य वाणी भी सुना दी—अगर काम अच्छा दिखा सका तो वेतन वृद्धि, पदोन्नति अनिवार्य है। क्योंकि उसका मालिक एक चाय की दूकान खोलने जा रहा है। आजकल हरनाथ की बात का विरोध नहीं करता।

उत्तर बांका कटा वाले की आंखें-चमक उठीं।

—तेरा नाम क्या है? जगत ने चाय की चुस्की लेते हुए कहा।

—लधनू है जी!

—कुछ बुरा नहीं है—हालांकि लबनू होता तो हमें बुरा लगता।

सिगरेट जलाता हुआ महंत कहता गया—देख, यह घर-बार तेरा है। हमें सुबह-शाम खाना, सबेरे-शाम तीन कप चाय देनी है बस, इसके अलावा चाहे तू बैठे रहना, सोये रहना, गाना गाना, हंसना, बिहु नाचना गाना, जो चाहे करना।

—सोऊंगा ही जी, गाना-आना नहीं आता। वह बीच में ही रोककर बोल उठा।

हरनाथ के मालिक ने किताब की दूकान के साथ एक चाय का स्टाल भी खोल दिया अत: हरिनाथ का काम काफी बढ़ गया। हालांकि वेतन न बढ़ा ठीक ढंग से चलने लगे तो बढ़ने वाला है। क्योंकि उसके साथ ही मालिक ने एक छोटा-सा प्रेस भी खरीद लिया था। प्रेस के नाम पर हरनाथ का दिल उछल उठा था। उसके बहुत दिनों का सपना था। मालिक ने हरनाथ का दिल समझा। मन ही मन एक बार हंस पड़ा। आश्वासन दिया, प्रेस में हरनाथ की किताब ही पहले छपेगी। बहुत दिन पहले हरनाथ की लिखी कहानियां तुकान्त कविताएं आदि पड़ी हैं। अत: हरनाथ का दिल भीतर-ही-भीतर कुलांचे भरने लगा। इसके फलस्वरूप खाने और सोने की, यहां तक कि रविवार को भी फुरसत मिलना कठिन हो गया। लेकिन वेतन पहले जैसा ही रहा।

दूसरी ओर उत्तर बांका कटा वाले का जो समय पहले खत्म ही न होता था, वह दोनों हाथों से मुट्ठी-मुट्ठी खर्च करने के बावजूद बांटने को बचा नहीं। साफ-सुथरी बिछी चारपाई उसे देखते ही मानो आंखों से इशारा करती। अरे—बस एक बार सिर्फ एक बार, लेट जा परन्तु रात को बारह बजे के पहले उत्तर बांका कटा वाला चारपाई की पुकार पर कोई ध्यान नहीं दे पाता था।

उसका भी कारण था। रसोई बनाने के लिए धान से एक-एक चावल का दाना चुन-चुनकर निकालना पड़ता है, पहले उसे पता न था। पता रहता भी भला कैसे? बेचारा आटे-दाल का भाव न जानने वाला आदमी ठहरा। सोचने पर वह इतना ही समझ सका था कि उस जैसे रसोइये को परेशान करने के लिए ही दूकानदार चावल की ऐसी हालत कर दिया करते हैं, नहीं तो भला चावल के बदले वे धान क्यों देते ?

महन्त उसे समझाता— समझा न, धान की भूसी में काफी विटामिन होता है। इसीलिए तन्दुरुस्ती ठीक रखने के वास्ते यह व्यवस्था है।

तो फिर भात में धान मिलने पर आप लोग नाराज क्यों होते हैं जी। बरा बाब कितनी गालियां बका करते हैं।

बरा बाबू याने रत्नेश्वर ! बाल खींचते हुए डांट कर बातें करता है बरा बाबू।

बरा बाबू नहीं जानता। जिन्दगी में भी कभी विटामिन निगली होती तब न ! देखा नहीं रूप कैसा है—कहकर उसने एक असमीया कहावत दुहरायी "खाओ चिकाचन्दा; पिन्धो घोबाइ धोवा, गा हल तिअहर जालि।" याने खाता, रसमलाई, पहनता धोबी का धुला, पर शरीर बना खीरे-सा कोमल। बरा बाबू की देह पर नजर डाली है न, कैसा बिना हाड़-मांस का कंकाल है ?

बातों में बड़ा रस पाकर वह हंस पड़ा—हां जी !

हरनाथ ने समझाया, तू देख ही रहा है न, मुझे तो खाने-सोने तक की फुरसत नहीं मिलती धोबी को कपड़ा देने पर वह प्राय: चतुर्थ विभक्ति लगाना चाहता है। अत: कम-से-कम मेरी धोती तू ही धो देना।

हरनाथ बाबू उसे बहुत कुछ भरोसा देते रहे हैं, इसलिए उसे कोई एतराज है नहीं।

मगर चतुर्थी विभक्ति क्या बला है, समझ न पाकर वह भौंचक रह गया।

—समझा नहीं ?

—ऊं हुं-क्।

—ओ, इसीलिए चेहरा राह किनारे के लेटर-बाक्स की भांति किए हुए है ? सुन, मास्टर के आने पर पूछना, 'धोबी को' व्याकरण के अनुसार असल में द्वितीया विभक्ति ही होनी चाहिए, परन्तु असल में उसका अपवाद होता है।

सभी लोग उससे कपड़े भी धुलवाने लगे। हर आदमी ने एक छोटे से भाषण और दो-चार आने पैसे देकर ही काम करवाना शुरू किया। हालांकि वेतन बढ़ा नहीं।

हरनाथ रात को चार घंटे भी सो नहीं पाता क्योंकि एक नया काम सीखने का मौका मिला है। वह है प्रूफ देखना। प्रेस का काम शुरू हो गया है। किन्हीं दफ्तरों-कार्यालयों के फार्म आदि अभी छाप रहे हैं। किताबें बाद में छापी जायेंगी और किताब याने हरनाथ की किताब, उसमें तो कोई संदेह नहीं। इसी कारण नये प्रूफ रीडर की बजाय हरनाथ ही किताब की दूकान में बैठा मैनेजरी करते समय ही प्रूफ भी देख दिया करेगा। चाहे जो भी हो, मैनेजरी करते समय प्रूफ देखना तो संभव नहीं होता, इसलिए रात को घर लेते आना पड़ता है। सब कुछ ठीक ही चलता आ रहा था। परन्तु एक दिन अचानक बोरिया-बिस्तर बांधकर आ खड़ा हुआ उत्तर बांका कटा का लधनू।

—का च वार्ता ? क्या बात है ? महन्त ने पूछा।

—मैं चला।

—चला ? सभी झल्ला उठे। साथ ही चौंके भी।

—ठीक है, एक आदमी बदली दे जा, नहीं तो वेतन नहीं मिलेगा। बात खींचता गंभीरता से रत्नेश्वर कह उठा।

अन्दर ही अन्दर सभी का क्रोध जाग उठा। रसोइया न रहे तो क्रोध करने की बात भी है। इस बड़े शहर में इधर आस-पास कोई होटल भी नहीं, है तो बस पान बाजार में ही।

इसके बाद शाम को उसने जो चीज ला हाजिर की, देखते ही सबकी आंखें फैली रह गयीं। एक बिलकुल ठट्ठ बूढ़ा नेपाली।

—यह कैसी चीज ले आया ? महन्त बिलकुल आसमान से टपका।

—बदली ! उत्तर बांका कटा ने जवाब दिया।

—हूं, हम चार आदमी हैं देखकर, अरथी उठाने के बारे में निश्चित होकर ही यह काम किया है ? मास्टर ने मास्टरी के लहजे में कहा।

नये ने अपने पिचके झुर्रियों भरे गालों को हंसी से टंगी हुई थैली-सी बनाते हुए बताया कि वह भार उठा सकता है। उतनी सामर्थ्य उसकी इस देह में भी है।

अतः उसकी श्रवण-शक्ति के बारे में सभी मन में संदिग्ध हो गये। परन्तु बरा बाबू की बात ही अलग है। उसे स्वीकारोक्ति भी चाहिए।

—अरे यह बुड्डा बहरा है। बाल खींचना छोड़ बरा बोला। वह नया मुस्कुरा पड़ा बरा को क्षण भर में ही भला उसने पहचान कैसे लिया है ?

बरा मोटर साइकिल की भांति स्टार्ट हो पड़ा—क्यों हंस रहा है ? किस लिए ? तो क्या मैं झूठा कहता हूं ?

—हां बाबू—सुनकर सभी ठहाके लगाकर हंस पड़े।

—क्या ? अब मैं ही झूठा हो गया हूं ? बरा उसके कान के पास जाकर चिल्ला उठा।

वह मानो उछल पड़ा। अरे राम-राम, विष्णु-विष्णु बाबू, भला आप झूठे किस लिए होंगे ?

हरनाथ ने आखिर पुराने की ओर देखकर पूछा—क्या यह काम कर सकेगा ?

—सकेगा, सकेगा, मुझसे कहा है न ! साथ ही बूढ़े के कंधे को पकड़ हिलाकर उसने पूछा—ओ बूढ़े अब कहता क्यों नहीं ?

उत्तर बांकाकटा की जल्दी बाजी करने का काफी कारण था। उस दिन उसे सिनेमा देखना था।

बुड्ढ़ा हड़बड़ाता हुआ बोल पड़ा—हां बाबू, सकेगा।

— सकेगा, कहने को तो कह रहा है, पर ऊहुं, सकेगा नहीं शायद।

—मसूढ़े में दांत तो बस एक ही बचा है, देखते हो या नहीं ? हरनाथ बोला।

—बुड्ढ़ा हुआ तो क्या हुआ, उसे तो रुपये चाहिए। कहते हैं कि उसके घर में एक नातिन है, रुपये कमा कर उसकी शादी करनी है।

रत्नेश्वर के दिन का गुस्सा मिटा न था, क्योंकि उस बूढ़े ने अपने को बहरा नहीं माना। जो भी हो, काम उसे दे दिया गया। पेट तो आखिर गुस्से से भरेगा नहीं।

बुड्ढ़ा भी छोड़ने वाला जीव तो था नहीं, अपने को बहरा नहीं मानता। हालांकि पानी के बदले कोयला, कोयले के बदले पानी लाना, प्यार से बुलाने पर गाली समझकर बड़बड़ाना, आदि नाटक अभिनय दिन में दसों बार दिखाने लगा। लड़खड़ाता काम करता रहता, हाथ-पैर कांपते, हालांकि 'काम कर नहीं सकता तो जाना पड़ेगा' कहने पर छाती फुलाकर कह उठता—सकेगा क्यू नहीं, सकेगा ?

हरनाथ का व्यापार दिनों-दिन बढ़ता जा रहा था। नये-नये लोग भी लिये जा रहे थे। किताबें भी छप रही थीं—प्राथमिक विद्यालय की पुस्तकें, पहाड़े की किताबें आदि। हरनाथ का काम भी बढ़ गया था, साथ ही सम्मान भी। मालिक ने सबसे कह दिया था—मैनेजर की बात ही आखिरी है। वेतन के बारे में एतराज उठाने की कई बार इच्छा होने पर भी मुंह खोलकर कह नहीं पाया था हरनाथ। अरे, कहे भी तो किस प्रकार ?

मेस भी चल रही थी। बुड्ढ़े ने दिनों-दिन नया रंग दिखाना शुरू किया परन्तु 'वह बहरा है', रत्नेश्वर अनेक कोशिश के बावजूद उससे यह स्वीकारोक्ति कबूल नहीं करा सका। हर दिन रत्नेश्वर उसे कुछ न कुछ काम करने को दे जाता। इतने धीमे स्वर से मुंह के अन्दर ही बात कहता कि अच्छे-भले आदमी के कान के लिए भी समझ

पाना असंभव था। बुड्ढा अपना इज्जत बचाते हुए कहने भर से ही समझने वाला बन जाता। शाम को रत्नेश्वर गालियां बकता, वह गालियां सह भले लेता, पर बहरा है यह बात स्वीकार नहीं करता।

अपर डिवीजन मिलने का चांस था रत्नेश्वर का। उसे फुसला, लालच दिखला, उसके हाथों इतने दिन काम करवाया, जब चांस आया, हेडमास्टर के एक सम्बन्धी को वह मौका मिल गया। वह गुस्से के मारे लाल-पीला होकर दफ्तर से छुट्टी ले, चला आया। आईना देख, बिस्तर पर लेटे अपने बाल खींचने लगा।

रात को खाना खाते समय चारों सिद्ध इकट्ठे हुए। दिन भर के अनुभवों की बातों की चर्चा आमतौर पर खाना खाते समय ही हुआ करती। परन्तु उस दिन सबके दिल भारी थे।

रत्नेश्वर ने समझा, वह गंभीर है, इसी कारण सबका मन भारी है। क्या कहे, सोचकर बोला—दुनिया न जाने कैसी हो गयी है, धूर्तता और बदमाशी से भर चुकी है।

परन्तु इसमें नयी बात क्या है? इसलिए किसी ने कुछ कहने की जरूरत नहीं समझी। पहेली का मुद्दा क्या है, यह जानने को सभी उत्सुक रहे—क्योंकि वे जानते हैं कि रत्नेश्वर ने जब बात शुरू की है तो कभी न कभी वह कह ही डालेगा।

रत्नेश्वर ने जब ऐसा कहा तो हरनाथ को लगा कि मानो उसी का मजाक उड़ा, अपना ही इतिहास नमक-मिर्च लगाकर कह रहा है। मगर मजाक तो नहीं रत्नेश्वर का अपना इतिहास है।

—रे, धोबी के यहां से कपड़ा लाया था! अचानक रत्नेश्वर बुड्ढे से पूछ बैठा।

उसने क्या सुना या समझा, कह नहीं सकते, सिर्फ—हां बाबू, कहकर मान लिया। खाना खाने के बाद कपड़ा न देख रत्नेश्वर गरज उठा।

—कपड़ा है कहां, बुड्ढे! दांत पीसकर रत्नेश्वर ने पूछा।

—कपड़ा, बाबू?

—बुड्ढे! फिर उसने दोहराया?

लड़खड़ाता जल्दी से उसने उस लुंगी को दिखला दिया जिसे उसने बाहर से लाकर रखा था। रत्नेश्वर का सिर चकरा गया। बुड्ढे का हाथ पकड़ झकझोरने लगा।

धोबी के यहां से कमीज लाने को कहा था—वह कहां है? रत्नेश्वर की आज की मूर्ति देखकर बुड्ढे के होश उड़ गये। वह कांपने लगा। उसके हाथ को मुट्ठी में पकड़े रत्नेश्वर चीख उठा—रे, मान ले जल्द कि तू बहरा है। कान से अच्छी तरह सुनता नहीं।

उसकी जबान बंद थी। दूसरे लोग भी चुप थे। फिर एक बार झकझोर कर रत्नेश्वर ने पूछा—बता, बोलता क्यों नहीं? आज तुझे आसानी से छोड़ने वाला नहीं।

किसी की ओर देखे बगैर—खिड़की से उदास दृष्टि से देखते हुए उसने भरे गले से

कहा—हां बाबू, बीमारी हुई थी।

सभी ठहाके लगाकर हंस पड़े। मेस में फिर हलका वातावरण आ गया। कई ओर से टीका-टिप्पणियां छींटाकशी होने लगीं।

—बस यही बात तू कहता क्यों नहीं था? बुड्ढा होकर तेरी नीयत बिगड़ गयी है?

बुड्ढा पहले जैसा ही गमगीन रहा। मगर रत्नेश्वर हंस नहीं रहा था। धीरे से मुट्ठी छोड़ गुस्से से उसकी ओर देखता हुआ बिस्तर पर जा बैठा। एक सिगरेट भी जला ली।

साथ के लोग इस बीच मसहरी डालकर सोने लगे थे। रत्नेश्वर तल्लीनता से सिगरेट फूंकता रहा। एक बार आईने में देखा तो लगा कि उसकी भौंहें अब भी तनी हुई हैं। धीरे-धीरे वह हंस पड़ा। मुस्कान दबा न पाने के कारण आखिर खिलखिला कर हंस पड़ा। महन्त ने लेटे-लेटे मसहरी उठाकर झांका। अपने बालों को एक बार प्यार से खींचकर सिगरेट का बचा टुकड़ा महन्त की तरफ फेंक, उसकी ओर देखता हुआ रत्नेश्वर चीख पड़ा—वह इसी बात को मान नहीं रहा था, देखा न?

याने वह बहरा है।

परम संतोष से रत्नेश्वर सोने के इंतजाम में जुट गया।

(1951)

12. मछली और इन्सान

तिराहे के मोड़ पर लोग हरिध्वनि कर रहे थे।

खलिहान की टट्टी पर अंकुसी से टंगे पोलो[1] को हाथ में ले और टोणा[2] को पीठ पर बांधकर उसने तीन साल के अपने बच्चे से पूछा—

—बेटा, बड़ी मछली मिलेगी न ?

—ऊं···, बप्पी, ईत्ती बली मछली मिलेगी। मुन्ने ने हाथ से मछली को बांहों में भरने का भाव दिखाकर कहा—पत्नी ने मुस्करा कर जीवकान्त के मुंह की ओर देखा। उसकी हंसी बता रही थी कि देव-बच्चे की बात है, जरूर फल देगी। पत्नी की हंसी से उसका शरीर झनझना उठा। उसे लगा, उस हंसी को पोलो से पकड़कर छाती पर के टोणे में कैद कर रख ले। उसे चार साल पहले के विवाह के बाद के दिनों की याद आ गयी। कुछ कहना चाहता था, पर कह नहीं पाया। इस कारण जीवकान्त चुपचाप हंस दिया। तभी पन्द्रह साल का डम्बरू हाथ मे एक जुलुकी ले दौड़ा आया। कहा—चाचा, जल्दी करो, लोग तो चले गये हैं।

—चल, चल, दौड़, आगे बढ़। कह कर अपनी हंसी पूरी करके जीवकान्त ने तेजी से कदम बढ़ा दिये।

आज की यात्रा ही उसे बता रही है कि वह खाली हाथ नहीं लौटेगा। माघ बिहू का भोज खाली नहीं जायेगा, ऐसा लग रहा है।

गांव के लगभग चालीस बूढ़े-जवान लोग मिलकर मोड़ पर इकट्ठे हो आखिरी बार के लिए हरिध्वनि कर रहे थे। कौन जाने वाला है, आ जाये। इसके बाद सभी लोग खेतों के बीच से होकर तेजी से चार मील दूर की महखुटि झील की ओर चल पड़े। कुत्ते की चाल से दौड़ता हुआ जीवकान्त राह में जाकर मंडली से मिल गया।

धान की कटाई खत्म हो चुकी थी। खेत सूने पड़े थे। बादामी रंग के अधकटे पुआर से तेजी से निकलता हुआ कोहरा लगातार ऊपर चला जा रहा था। मानो मछली पकड़ने के लिए ही हाथ में पोलो लेकर कुत्ते जैसी चाल से कोहरा भी भागा जा रहा हो।

कभी घुटने तक के अधकटे पुआरों के बीच से, कभी खेत की मेंडों पर, कभी आड़े तिरछे मुड़कर चले जा रहे थे। हर आदमी की पीठ पर खोलई थी, हाथ में पोलो था और मन में खोलई भर मछली पाने की आशा थी।

1. बांस का बना मछली पकड़ने का एक औजार।

2. बांस की बनी खोलई।

मगर जीवकान्त इन सबमें अकेला था। उसका मन सुबह की धूप जैसा ही खुश होकर नाच रहा था। उसका दिल कह रहा था, आज के अभियान में उसकी विजय अवश्य होगी। वह सबको दंग कर देगा।

घर से निकलते उसके चेहरे पर हंसी का जो बांकपन खिल उठा था, अनजाने वही बांकपन चेहरे पर अब भी था।

भगवान, तुम्हीं जानो, कृपा करना प्रभु! इस चार साल से वह पत्नी को कोई अच्छी मछली पकड़कर दिखा नहीं पाया है। सिर्फ नारो, बाटो, कुढ़ी, बरारी जैसी छोटी मछलियां ही हाथ आयी हैं। कोई बड़ी-सी रोहू मछली या भाकुर मछली आज पकड़ सके तो चार-पांच आदमी ले भार या सेंगा बना घर लाकर धप्प से आंगन के सामने फेंक देगा—गांव के औरत-मर्द, लड़के-लड़कियां उस मछली को घेरे रहेंगे। पत्नी तब क्या करेगी? तम्बाकू की चिलम ले कभी अन्दर, कभी बाहर आ-जा रही होगी। ओठों पर हंसी के मारे चिलम फूंकने के लिए भी वह मुंह को नुकीला नहीं बना पा रही होगी।

इस समूचे दृश्य को उसने अपनी आंखों के सामने ठहरा हुआ-सा पाया।

भगवान, अब तुम्हीं जानो यह सब।

करीब डेढ़ घंटे बाद लोग महखुटि जलाशय के किनारे पहुंचे। लम्बाई-चौड़ाई में बड़ा विशाल, जलाशय नहीं, सागर ही है यह महकुटि झील। लोग इस जलाशय के एक कोने में ही मछलियां पकड़ेंगे। वहीं चाहे जो कुछ मिल जाये। लोग जरा सुस्ता कर कपड़े बदल, बीड़ी-तम्बाकू खा-पीकर मछली मारने के लिए तैयार हो गये। कमर भली-भांति कस ली, सिर पर गमछी या चादर की पगड़ी चढ़ा ली। टोणा या खोलई पीठ पर अच्छी तरह बांध ली। इसके बाद सभी जलाशय में उतर पड़े। लम्बे लोग कुछ आगे चले गये—ठिगने लोग कुछ कम पानी में ही रहे। लड़कों ने बांस की बनी मछली मारने की जुलुकी ले रखी थी। जुलुकी, पोलो से छोटी और कम ऊंची होती है। उसका घेरा भी पोलो जैसा फैला नहीं होता। जुलुकी से गहरे पानी में मछली नहीं पकड़ी जा सकती। ऐसे लड़के झील के बिलकुल किनारे रह गये। जो दो-एक पानी में उतरना नहीं चाहते थे वे हाथ में लोहे का नुकीला बरछा लेकर किनारे-किनारे आगे बढ़े। वे वहीं छोटी-मोटी मछलियों को बेधकर पकड़ सकेंगे।

किनारे की कतार एक सीध में आगे बढ़ी। लोगों के पैरों और पोलो की आवाज से पहले तो मछलियां भागेंगी। हालांकि भागकर किनारे की तरफ ही जायेंगी। पर वहां से फिर इन्हीं लोगों की तरफ लौटेंगी और उनके पोलो में आकर फंस जायेंगी।

बीच-बीच में दो-एक आदमी रुक-रुककर अपने पोलो में हाथ डाल दो-एक छोटी-मोटी गेगटी, बरारी आदि मछलियां पकड़ने लगे थे। कोई-कोई विरक्ति से अपना पोलो ही उठा ले रहे थे। इस झील में अब पहले जैसी बड़ी मछलियां नहीं रह गयी हैं।

किनारे की ओर खड़ा भतीजा डम्बरू अपनी जुलुकी दबाकर एकदम चीख पड़ा—चाचा जल्दी आओ, बड़ी भयंकर मछली।

—हूं-हूं, जल्दी आना चाहिए ना? कहकर पास के लक्ष्मी ने अपना पोलो छोड़कर डम्बरू की जुलुकी में हाथ डाल मछली पकड़ दी। छोटी खपच्ची जैसा बरारी का पोअना। हुंह, यही है तेरी अभयंकर मछली। सब लोग हंस पड़े।

परन्तु इस बीच लोगों का दिल ठंडा पड़ने लगा था। बड़ी मछली फंसने का भी लक्षण होता है। वह लक्षण आज दिखाई नहीं दे रहा था। छोटी-मोटी जो मछलियां मिलीं, बस वही हैं।

लेकिन अकेले जीवकान्त की आशा और उत्साह घटे नहीं थे। वह जानता है, उसका दिल कह रहा है, आज का दिन यों ही बेकार जाने वाला नहीं है। देव-स्वरूप बच्चे ने बोला है, पत्नी की हंसी मिली है। यह सब निष्फल जाने वाले नहीं हैं।

उथले पानी में खड़े किसी ने एक बरछे से कुछ घोंपा। उसके हम-उम्र के एक ने पानी में से ही पुकारा—क्या चीज मारी है रे? रोहू या भाकुर?

—धत्, मछली नहीं, कुचिया। उथले पानी में खड़े लड़के ने जवाब दिया।

'दिया बाढ़ नीरे खुचिया' यानी झाड़ू से बुहार दे—कहकर दूसरे ने मजाक उड़ाई।

—रहने दे, रहने दे—खरिचात मरिचा दे गै, तेलिनी घाटे पार कर गे, दुपरीया कै सुधि पुछि चाम—(कोमल बांस के चूरे में मिर्च दे, तेलिनी घाट से। पार हो जा, दोपहर को पूछताछ देखेंगे)। पहले जिसने पूछा था—उसने किसी पुराने किस्से का यह पद गाकर सुना दिया।

क्षण भर में एक घटना घट गयी। भाग्य से वह घटना दुर्घटना में बदलते-बदलते रह गयी।

जीवकान्त के बाएं चार आदमियों की दूरी से उस कतार के ही समान्तर एक विशाल रोहू या भाकुर मछली उछलकर जीवकान्त की नाक पर दुम से झपेटा मार दायीं ओर चार आदमियों के आगे जा गिरी। अगर वह जरा-सी तिरछी होकर आती तो दो-चार आदमियों के नाक-मुंह कुचलकर बिलकुल आसमान के तारे ही दिखला देती।

—वाहवा, दो-तीन आदमी चीख उठे। कैसी विशाल मछली है ओ। किसी ने कहा—रोहू है, किसी ने कहा—'ढेकेरा' है।

जो आफत आकर टल गयी उसके बारे में आगे किसी ने सोच-विचार नहीं किया। लोगों में फिर नया उत्साह दिखाई पड़ा। 'पकड़ रे पकड़—बड़ी मछली आयी है' दो-चार लोगों ने पुकारा।

इस बार धीरे-धीरे पोलो लगाते हुए लोग फिर आगे बढ़े। पानी किसी की छाती तक था, किसी के गले तक। बड़ी मछली इसी पानी में ही फंस सकती है। सभी की छाती 'ढिपलि-ढिपलि' कर रही थी—न जाने किसके पोलो में फंसेगी वह मछली! फिर पोलो में फंस भी जाए तो वह तकलीफ देने के लिए ही फंसेगी—क्योंकि उस गहरे पानी

में उस मछली को पकड़ रखने की ताकत किसी की भी नहीं, पोलो में तो सिर्फ मछली का माथा ही समा पायेगा!

परन्तु जीवकान्त की मानसिक उत्तेजना चोटी पर पहुंच चुकी थी। उसके चेहरे पर एक दृढ़ता कपाल की फूली हुई नसों की भांति टनटना उठी।

यही तो मौका है, फिर कोई दूसरा मौका हाथ नहीं आयेगा। उसका उद्देश्य सफल होने का यही तो समय है।

घप्प की आवाज ने सबको चौंका दिया। सभी ने सिर उठाकर देखा कि जीवकान्त जी-जान से अपने पोलो को दबाकर बैठ गया है और रत्नेश्वर उछलकर उसके शरीर मे टिके होने जैसा खड़ा है।

—फंसी है?

—फंसी है—रत्न ने कांपते स्वर से चीखकर कई लोगों के पूछे प्रश्न का जवाब दिया। जीवकान्त कुछ जवाब देना चाहता था परन्तु उसकी आवाज नहीं निकली। पास का एक बूढ़ा आदमी अपना पोलो छोड़कर आगे बढ़ गया। पानी में दो-तीन डुबकियां लगा उसने एक बार बाहर निकल अपनी आंखें फैला दीं। सब समझ गए आंखें जितनी बड़ी बनाकर फैला दी हैं, मछली भी उसी हिसाब से बड़ी है। बूढ़े ने अपनी खोलई में बंधी रस्सी को दांतों से कुतरकर कुछ रस्सी काटी, अलग से कोई भी रस्सी नहीं लाया था। किसे इस बात का पता था? मगर वह रस्सी छोटी पड़ गयी, पटसन की रस्सी थी तिस पर पुरानी भी।

छह-सात बार डुबकी लगाने के बावजूद जब मछली के गलफड़े में रस्सी घुसा नहीं सका, तो बूढ़े ने हांफते हुए जीवकान्त से कहा—जीव, इसकी आशा छोड़ दे। यह ऐरी-गैरी मछली है नहीं, यह इसी जलाशय की भुतही मछली है। जमाने से यहीं रह रही है।

साथ के लोगों के चेहरे सूख गए। पोलो से मछली पकड़ने में यही बूढ़ा उस्ताद रहा है। उसकी बात चट्टान की रेखा है। भुतही मछली के किस्से सबने सुने हैं। बहुत दिन पहले कहते हैं किसी के पोलो में फंसी थी, पर वह पकड़ नहीं सका। उस रात से ही जोर का बुखार चढ़ आने के कारण एक ही सप्ताह में वह मर गया। वह बुखार में मछली की बात ही बड़बड़ाता रहता था, बीच में चौंककर चीख उठता था। झाड़-फूंक, मंत्र-तंत्र, ओझा-पंडित किसी से कुछ फायदा नहीं हुआ। पुरानी बात है।

सभी एक स्वर से चीख पड़े—छोड़ दे, छोड़ दे जीव. देह रहे तो और मछली मिलेगी।

जीव, रत्न और दो-चार लड़के हालांकि भूत-प्रेत नहीं मानते। यह मछली तो पकड़नी ही होगी। जीव ने रत्न और विजय को पोलो दबाए रखने को कहकर जीवकान्त खुद नीचे उतर गया।

लोगों ने पोलो लेकर आगे बढ़ जाने का ही तय किया। दिन भी ढल चुका था।

बड़ी मछली अगर पोलो में फस जाए तो पोलो के अन्दर हाथ डालकर मछली

गलफड़े में उंगली घुसेड़ उसे पोलो के साथ ही उठा लाना होता है। परन्तु उससे भी बड़ी मछली हो तो एक मात्र तरीका है कि उसके गलफड़े के नीचे से रस्सी घुसेड़कर मुंह से निकाल रस्सी के दोनों सिरे पोलो के साथ ही मजबूती से बांध दिए जाएं। परन्तु वही सबसे कठिन काम है। पोलो अगर जरा भी ढीला रहे तो उसे उछालकर मछली तो निकल जायेगी ही, आदमी को भी साथ खींच ले जाएगी। आंचल की गांठ में जीव बांधने जैसा ही काम है वह।

जीवकान्त हाथ में रस्सी ले पानी में तिरने लगा।

लोग आगे बढ़ जाने लगे थे। पोलो के साथ रह गए थे रत्न और विजय। डम्बरू अपनी जुलुकी लिये कुछ दूरी पर टकटकी लगाए देखता रहा, क्योंकि वह तैर नहीं सकता, वहां पानी काफी गहरा था।

लगभग आधा घंटा बारी-बारी से डुबकियां लगाने के बाद दूसरी बार जीवकान्त की बारी में उनका प्रयास सफल हुआ। मछली में रस्सी लगाकर उसे पोलो के साथ बांध दिया। रस्सी छोटी थी इस कारण पोलो के बीच एक तीली कुछ मोड़कर तीन-चार तीलियां समेटकर गांठ लगा दी।

अब भागेगी कहां? उस पूस-माघ के जाड़े में भी वे तीनों पसीने-पसीने होकर जरा सुस्ताने लगे।

तभी पलक झपकते ही एक घटना घट गयी। जीवकान्त ने पोलो को पकड़ा ही था, उन दोनों ने हाथ जरा ढीले किये भर थे, तभी मछली अचानक उछल पड़ी और जैसे बंसी का छर्रा खींच ले जाए, वैसे ही पोलो को खींचती जलाशय के बीच जा पहुंची। जीवकान्त एक हाथ से पोलो पकड़े हुए था, दूसरे हाथ से तैरता हुआ आगे बढ़ रहा था, उसकी दुर्जेय खोलई पीठ पर बंधी थी।

क्या हो गया, रत्न और विजय पहले-पहल कुछ भी तय न कर पाए, वे हक्के-बक्के-से रह गए।

अपने आप पोलो लगाने में जुटे हुए दूसरे लोगों ने अचानक हुई उस आवाज से मुड़कर देखा और चीखने लगे।

—अरे, वह तो आज मरा, सर्वनाश हो गया। अरे रे, छोड़ दे, अरे छोड़ दे रे।

लोग इधर-उधर बिखर गए। कुछ लोग पानी से निकल किनारे-किनारे दौड़ने लगे। इतनी देर बाद रत्न और विजय की चेतना लौटी। दोनों अपने पोलो छोड़कर तैरने लगे। पर तब तक जीवकान्त बहुत दूर निकल गया था।

सबने देखा—विशाल फैले हुए सागर जैसे महखुटी जलाशय के बीचोंबीच एक आदमी बंसी के छर्रे-जैसा चक्कर काट रहा है। तेजी से क्षण भर में किस ओर जा रहा है, कुछ पता नहीं। कभी किनारे की तरफ आता तो दूसरे ही क्षण दुगुनी तेजी से बीच में काफी दूर निकल जाता।

रत्न और विजय तैरते हुए किस ओर जाना है, इसकी सुध-बुध भूल गए। एक बार

अगर नजदीक आते तो दूसरी बार काफी दूर निकल जाते।

किनारे से पकड़, पकड़; छोड़ दे, छोड़ दे आदि परस्पर विरोधी आवाजें गूंज रही थीं।

जीवकान्त मगर एक तरह से होश-हवाश खो बैठा था। मंत्रमुग्ध की भांति वह पोलो के संग-संग अपने को छोड़कर तिरता जा रहा था। एक बार उसने किसी तरह अपनी पीठ पर बंधी खोलई की रस्सी खोल डाली, फिर दोनों हाथों में पोलो के सिरे को मजबूती से पकड़े रहकर समूचे शरीर को पानी पर फैला दिया। कितना खींचती है, खींचे तो सही यह मछली '

पानी में बल होता है मछली का, आदमी का बल तो धरती पर ही होता है। बंसी में अगर कोई बड़ी मछली फंस जाए तो धागे को ढीला कर वह जितना खींच सके खींचने देना चाहिए। यही तरीका है। जीवकान्त जानता है। लेकिन पोलो के लिए क्या करना चाहिए, उसे पता नहीं। इसलिए उसने सोचा, कितनी दूर जाती है यह, जाए तो भला। मछली भी तो थकती है न आखिर।···एक बार अचानक उसे मानो होश-सा आ गया। देखा, विजय और रत्न जो उसके पीछे तैरते आ रहे थे, अब थककर किनारे की ओर चले जा रहे हैं। गांव में जीवकान्त जैसा तैराक और कोई नहीं है। रत्न और विजय भी तैरने के दो-एक तरीके ही जानते हैं, लेकिन वे भी ज्यादा देर तक पानी में रह नहीं सकते। किनारे के लोगों में से डम्बरू की आवाज उसे ज्यादा साफ सुनायी दे रही थी। अचानक वह जब घर से निकल रहा था, उस क्षण की उसे याद आ गयी। उसकी पत्नी, उसके बच्चे, पत्नी की वह हंसी। आज के इस थोड़े से समय में सबकुछ सच या झूठा हो जा सकता है। यह मछली अगर वह ले न जा सके तो उसका जीवन ही व्यर्थ है। लेकिन वह अगर ले ही नहीं जा सकता तो भगवान् ने उसके पोलो में भला मछली को फंसाया ही क्यों? प्रभु क्या आशा दिखाकर इस तरह से वंचित करेंगे? यह मछली वह अकेले नहीं खाएगा, लोगों को भोज देगा। अगर वह पकड़ सके, हे भगवान्, अगर पकड़ सके— गांव के पूजाघर के लिए उसने एक दीया चढ़ाने का संकल्प कर लिया।

फिर उसके घर वाले भी तो, कम से कम एक बार बड़ी मछली खाने की बड़ी इच्छा रखते हैं। मछली बेचने वाली से धान के बदले कभी-कभी कटी बरारी का एक टुकड़ा ले लेते हैं—वही बड़ी मछली होती है। बाजार में तो मछली की कीमत इतनी चढ़ गयी है कि वह सब सिर्फ धनी आदमी के लिए ही है। कितने ही दिन दसों काम छोड़कर वह बंसी-पोलो ले मछली पकड़ने गया है। कितने ही दिन पत्नी की हाथ में कटारी उछालने पर चित्त हो गिरी है। पर कभी तो बड़ी मछली हाथ नहीं आयी। आज यह बड़ी मछली पाने के बावजूद श्रीवत्स राजा की भांति हाथ आयी मछली भी निकली जा रही है।

पर जो भी हो, संसार में तो यत्न करने पर ही रत्न मिलता है। भगवान् ने मछली तो दे दी है, अब आदमी की हिम्मत और पराक्रम से उसे पकड़ना पड़ेगा। जीवकान्त

सोचता रहा।

अचानक एक बार मुड़कर उसने देखा, लोग दूसरे किनारे आकर मछली पकड़ने लगे हैं। किनारे दो-तीन आदमी पेट के बल लेटे उसकी ओर देख रहे हैं। शायद वे रत्न, विजय और डम्बरू हैं। शेष लोग तो मौके से दो-एक मछली मिल सकती है या नहीं, उसी की कोशिश करने लगे हैं। चीख-पुकार कब की रुक चुकी है, उसने इतनी देर बाद अब अनुभव किया।

झील की फैली हुई छाती—चांदी की एक थाली-जैसी जगमगा रही थी। बिलकुल साफ चमकीले नीले पानी में सूरज की चमकती किरणें पड़कर आंखों में चकाचौंध पैदा कर रही थी। सूरज कभी का ढल चुका था। शाम होने में देर ही कितनी? तब तो पानी पर उसे रहते काफी समय निकल गया है।

अचानक अकेलेपन के आतंक ने उसको तालू से लेकर तलवे तक कंपा दिया। हवा में झील की छाती जैसे कांप रही थी, वैसे ही उसकी छाती में भी एक आतंक कांपने लगा। फैले हुए पानी के चारों ओर, उसके ऊपर का जो खुला आकाश एक पोलो जैसे ही उसे फंसाने के लिए रुका हुआ है, क्या यही उसकी मृत्यु है? क्या मृत्यु इतनी फैली हुई है, इतनी खुली हुई, इतनी अकेली होती है? भुतही मछली का मतलब मानो अब उसे समझ में आने लगा। सचमुच, क्या मछली ही उसका काल बनकर उसे इस सागर के बीच खींच लायी है। इस पोलो को पकड़े हुए उसके, पोलो के नीचे की बंधी हुई मछली जो दिखाई नहीं दे रही है, इन दोनों के बीच भला और कौन है? मानो कोई दोनों के बीच, उस पोलो पर बैठा हुआ है। दोनों के बीच मानो काल ही बैठा है। उनमें से किसी एक को या दोनों को ही काल खींच ले आया है। साथ और कोई नहीं। दोनों ही अकेले हैं। उसका समूचा शरीर बर्फ की भांति ठंडा हो गया। स्नायुमंडल अशक्त हो गया। अगर वह पोलो, मछली सब कुछ छोड़ दे तो इतनी दूर तैरकर नहीं जा सकता। उसके हाथ नहीं चल रहे, पैर नहीं चल रहे, छाती में दर्द अनुभव हो रहा था। आंखों के सामने कुछ भी नहीं—सवेरे के कोहरे-सा मानो सब कुछ सफेद हो चुका हो। उसे ग्राह-गजेन्द्र की कथा याद आ गयी। 'गजेन्द्र शरण लैला त्राहि हरि बुलि' (गजेन्द्र ने 'त्राहि हरि' कहकर हरि की शरण ली) यही मरण है। उसे याद आ गया किसी बाबाजी का कहना—'पानी में डर है', लगा कि वह चीख पड़े, मगर चीखकर पुकारे भी तो किसे? बापू को? बापू की मां को? उनके चेहरे अगर इस समय कोई दिखला देता। बापू को बालिग होने में अभी और कई साल हैं। उन्हें कौन खिलाए-पहनाएगा? कौन उनकी देखभाल करेगा? इस साल के लिए भले हो चिन्ता की बात नहीं, क्योंकि धान खलिहान में रख चुका है। पर---पर उसके बाद?

अचानक सचेत हो उठने-जैसा वह चौंक पड़ा। देखा, मछली उसे दूसरे किनारे की ओर खींचे लिये जा रही है। यानी जिस किनारे कोई आदमी नहीं है। भगवान् तुम्हीं रक्षक हो। तुम ही रक्षक हो। पोलो पकड़े हुए ही उसे लगा कि मछली में वह पहले की-

सी ताकत नहीं रही है। उसका बल भी खत्म हो रहा है। अगर वह पैर से जमीन छू सके तो मछली को पकड़कर रोक देगा। उसका शरीर गर्म हो उठा। न जाने कैसी-कैसी बुरी भावनाएं उसके मन में आ रही थीं। मछली पकड़नी है, खानी है। भगवान् ने उसे भोजन बनाकर ही सरजा है। कल ही साल भर का त्योहार भोगाली बिहु है !···हा भगवान् ! ठीक वह मछली उसे बिलकुल किनारे की ओर ही खींचे लिये जा रही है और सिर्फ कुछ हाथ रह गया है, वह तब जमीन छू सकेगा।

लेकिन···

अचानक उसकी छाती पानी से निकाली मछली जैसी ही फड़फड़ाने लगी। अगर-अगर रस्सी टूट जाए। पुरानी रस्सी···इतनी देर तक खींचातानी। भगवान्, इसके बदले गहरे पानी में ही तुमने मछली को क्यों छुड़वा नहीं दिया ? तुम क्या इतना निर्मम होओगे ?

उसने देखा, लोग दूसरे सिरे से पोलो खोलई आदि फेंक-फांककर वह जिस किनारे पहुंच रहा था उसी ओर बेतहासा दौड़ने लगे थे। हालांकि तब भी वह काफी दूर था—काफी—।

एक बार भगवान का नाम लेकर वह खड़ा हो गया। जमीन-जमीन हां, वह जमीन तक पहुंच गया है। मछली भी बड़ी अशक्त हो गयी थी। धीरे, बहुत ही धीरे वह पोलो खींचने लगा। पानी गले तक, पानी छाती तक, पानी पेट तक, पानी कमर तक ! पोलो को जरा खींचते ही मछली रुक गयी। इस क्षण होशियार, मछली अगर जोर लगाए, या वही जोर लगाए, तो रस्सी टूट सकती है या पोलो की तीलियां टूट जा सकती हैं। भगवान्, तुम हो, उरुका[1] की रात का खाना···लड़के, बच्चे···हा, लड़के···औरतें···गांव वाले वंश-परिवार वाले···।

पर—मछली ? बिलकुल स्तब्ध-सी रहकर क्या कर रही है ?—क्या सोच रही है ?—क्या उसको भी कोई उरुका आयी है ?—क्या वह भी भगवान् से प्रार्थना कर रही है ?—बच्चे, पत्नी, गांव के लोग—बन्धु-बान्धव—उसके बाल-बच्चे भी क्या उसके लिए बापू आदि की भांति उसकी बाट जोह रहे हैं ?—क्षण भर पहले ही तो, उस गहरे पानी में जिन्दगी का भरोसा छोड़कर वह भगवान् को पुकार रहा था। उस समय उसके पास कोई न था—बच्चे, पत्नी, गांव के लोग—कोई नहीं। उस महासागर के बीच वे दो प्राणी मृत्यु से जूझ रहे थे, साथ कोई नहीं था। न मछली के, न उसके। दोनों अकेले थे। उसका वह डम्बरू, उसके गांव वाले, किनारे से असहाय की भांति देखते रहे थे।

मछली के अपने, उसके भी अपने। सभी केवल—'चाइ मात्र थाके काले घरे येतिक्षण' यानी काल जब तक बाल पकड़ नहीं लेता तब तक देख ही रहे थे। काल ने जब उसके बाल पकड़ लिये थे, उस क्षण उसकी एक मात्र संगिनी एक मात्र मित्र थी,

1. बिहु त्योहार की पहली रात।

उसके पोलो में फंसी यह मछली और मछली का भी एक मात्र मित्र, अकेला साथी था—मछली का शत्रुरूपी वह आदमी। दोनों की मृत्यु के क्षण में दोनों परम आत्मीय बनकर साथ-साथ चक्कर लगा रहे थे। तो फिर यह मछली उसका परम आत्मीय है, घनिष्ठ मित्र है।

यह भीषण शक्तिशाली मछली अब तक वह कितने घमंड से चक्कर लगा रही थी। लेकिन अब तो वह क्रमशः उसके हाथ की मुट्ठी में क्रमशः घुसी आ रही है। उधर दौड़ते हुए लोग नजदीक पहुंच ही रहे हैं। डम्बरू सबके आगे-आगे दौड़ा आ रहा है। अब उसे सबकी मदद मिलेगी।—परन्तु हम दोनों तो घनिष्ठ मित्र हैं। मछली—हम तो घनिष्ठ मित्र हो चुके हैं—संकट के मित्र। वह, वे लोग आ ही पहुंचे हैं। लोग आ ही पहुंचे हैं—मछली, डम्बरू पहुंच ही रहा है, अब तो समय नहीं, मछली, अब तो समय नहीं ही है।

इसी बीच डम्बरू आकर पानी में उतर ही चुका था। समय नहीं है, मछली री, अब समय नहीं। खींच, खींच—रस्सी पकड़कर जीवकान्त लगातार खींचने लगा।

कमर झुकाकर गले तक पानी में डूबा जी-जान से जीवकान्त लगातार खींचने लगा—जिससे मछली को चोट न पहुंचे। डम्बरू आकर उसके पोलो को पकड़ने ही वाला था कि लोग उसके समीप आ ही पहुंचे थे।

अब तो समय नहीं रहा है, मछली री, अब तो समय नहीं, यह तो आखिरी समय है।

एक बार खिचाव में मछली को चोट लग गयी।

'धाउप्' से एक भयंकर आवाज हुई। पोलो को पकड़ने ही वाले डम्बरू की छाती उस आवाज से दहल गयी। अपनी बची ताकत लगाकर जीवकान्त ने जैसे ही रस्सी खींची, चोट खायी हुई मछली ने ठन् से रस्सी तोड़ डाली। यह भयंकर मछली लगभग तीन हाथ ऊपर उछलकर गहरे पानी में जा गिरी।

कैसी भयंकर मछली। डम्बरू पोलो की भांति मुंह बाए रह गया—आंखें फैली रह गयीं। कैसी अजीब बात है, चाचा ने मछली को छोड़ दिया।

—'रस्सी पुरानी थी, तोड़ गयी।' मछली जहां उछलकर गिरी, वहां की लहरें पोलो की भांति चक्करदार हो क्रमशः फैलती जा रही थीं—उस ओर देखते हुए जीवकान्त ने कहा। लहरें आकर उसके पैरों में कोमल चोटें करने लगीं। कुछ कोमल-कोमल-सी अबोध मानो 'चेलेकना' मछलियां आकर उसके पैरों में कातरता से चक्कर लगा रही थीं।

पोलो डम्बरू के हाथ में दे, पानी पर तैरता जीवकान्त किनारे की ओर बढ़ गया।

लोग आकर इकट्ठे हो गए।

(आकाशवाणी गुवाहाटी केन्द्र से अनातार-सप्ताह के उपलक्ष में प्रसारित।)

(1961)